नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-४

समवाय

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प- ४

आगमसूत्र- ४- 'समवाय'

अंगसूत्र- ४-हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
००१	समवाय - १, २ - संबंधी वर्णन	०५	०२७	समवाय - ५३, ५४ - संबंधी वर्णन	५०
००२	समवाय - ३, ४ - संबंधी वर्णन	०८	०२८	समवाय - ५५, ५६ - संबंधी वर्णन	५१
००३	समवाय - ५, ६ - संबंधी वर्णन	१०	०२९	समवाय - ५७, ५८ - संबंधी वर्णन	५१
००४	समवाय - ७, ८ - संबंधी वर्णन	१२	०३०	समवाय - ५९, ६० - संबंधी वर्णन	५२
००५	समवाय - ९, १० - संबंधी वर्णन	१४	०३१	समवाय - ६१, ६२ - संबंधी वर्णन	५२
००६	समवाय - ११, १२ - संबंधी वर्णन	१७	०३२	समवाय - ६३, ६४ - संबंधी वर्णन	५३
००७	समवाय - १३, १४ - संबंधी वर्णन	१९	०३३	समवाय - ६५, ६६ - संबंधी वर्णन	५३
००८	समवाय - १५, १६ - संबंधी वर्णन	२१	०३४	समवाय - ६७, ६८ - संबंधी वर्णन	५४
००९	समवाय - १७, १८ - संबंधी वर्णन	२३	०३५	समवाय - ६९, ७० - संबंधी वर्णन	५५
०१०	समवाय - १९, २० - संबंधी वर्णन	२५	०३६	समवाय – ७१, ७२ - संबंधी वर्णन	५५
०११	समवाय - २१, २२ - संबंधी वर्णन	२७	०३७	समवाय – ७३, ७४ - संबंधी वर्णन	५६
०१२	समवाय - २३, २४ - संबंधी वर्णन	२९	०३८	समवाय – ७५, ७६ - संबंधी वर्णन	५७
०१३	समवाय - २५, २६ - संबंधी वर्णन	३१	०३९	समवाय – ७७, ७८ - संबंधी वर्णन	५७
०१४	समवाय - २७, २८ - संबंधी वर्णन	३२	०४०	समवाय – ७९, ८० - संबंधी वर्णन	५८
०१५	समवाय - २९, ३०- संबंधी वर्णन	३४	०४१	समवाय – ८१, ८२ - संबंधी वर्णन	५९
०१६	समवाय - ३१, ३२ - संबंधी वर्णन	३९	०४२	समवाय – ८३, ८४ - संबंधी वर्णन	५९
०१७	समवाय - ३३, ३४ - संबंधी वर्णन	४३	०४३	समवाय – ८५, ८६ - संबंधी वर्णन	६०
०१८	समवाय - ३५, ३६ - संबंधी वर्णन	४५	०४४	समवाय – ८७, ८८ - संबंधी वर्णन	६१
०१९	समवाय - ३७, ३८ - संबंधी वर्णन	४५	०४५	समवाय – ८९, ९० - संबंधी वर्णन	६२
०२०	समवाय - ३९, ४० - संबंधी वर्णन	४६	०४६	समवाय – ९१, ९२ - संबंधी वर्णन	६२
०२१	समवाय - ४१, ४२ - संबंधी वर्णन	४६	०४७	समवाय – ९३, ९४ - संबंधी वर्णन	६३
०२२	समवाय - ४३, ४४ - संबंधी वर्णन	४७	०४८	समवाय – ९५, ९६ - संबंधी वर्णन	६३
०२३	समवाय - ४५, ४६ - संबंधी वर्णन	४७	०४९	समवाय – ९७, ९८ - संबंधी वर्णन	६४
०२४	समवाय - ४७, ४८ - संबंधी वर्णन	४८	०५०	समवाय – ९९,१००- संबंधी वर्णन	६४
०२५	समवाय - ४९, ५० - संबंधी वर्णन	४८	०५१	समवाय –प्रकीर्णक संबंधी वर्णन	६६
०२६	समवाय - ५१, ५२ - संबंधी वर्णन	४९	-----	----------	

४५ आगम वर्गीकरण

क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'तत्त्वार्थसूत्र'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[४] समवाय
अंगसूत्र-४- हिन्दी अनुवाद

समवाय- १

सूत्र - १

हे आयुष्मन् ! उन भगवान ने ऐसा कहा है, मैने सूना है । [इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्तिम समय में विद्यमान उन श्रमण भगवान महावीर ने द्वादशांग गणिपिटक कहा है, वे भगवान] – आचार आदि श्रुतधर्म के आदिकर हैं (अपने समय में धर्म के आदि प्रणेता हैं), तीर्थंकर हैं, (धर्मरूप तीर्थ के प्रवर्तक हैं) । स्वयं सम्यक् बोधि को प्राप्त हुए हैं । पुरुषों में रूपातिशय आदि विशिष्ट गुणों के धारक होने से, एवं उत्तम वृत्ति वाले होने से पुरुषोत्तम हैं । सिंह के समान पराक्रमी होने से पुरुषसिंह हैं, पुरुषों में उत्तम सहस्रपत्र वाले श्वेत कमल के समान श्रेष्ठ होने से पुरुषवर-पुण्डरीक हैं । पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ती जैसे हैं, जैसे गन्धहस्ती के मद की गन्ध से बड़े-बड़े हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार आपके नाम की गन्धमात्र से बड़े-बड़े प्रवादी रूपी हाथी भाग खड़े होते हैं । वे लोकोत्तम हैं, क्योंकि ज्ञानातिशय आदि असाधारण गुणों से युक्त हैं और तीनों लोकों के स्वामियों द्वारा नमस्कृत हैं, इसीलिए तीनों लोको के नाथ हैं और अधिप अर्थात् स्वामी हैं क्योंकि जो प्राणियों के योग-क्षेम को करता है, वही नाथ और स्वामी कहा जाता है । लोक के हित करने से–उनका उद्धार करने से–लोकहीतकर हैं ।

लोक में प्रकाश और उद्योत करने से लोक-प्रदीप और लोक-प्रद्योतकर हैं । जीवमात्र को अभयदान के दाता हैं, अर्थात् प्राणीमात्र पर अभया (दया और करुणा) के धारक हैं, चक्षु का दाता जैसे महान उपकारी होता है, उसी प्रकार भगवान महावीर अज्ञान रूप अन्धकार में पड़े प्राणियों को सन्मार्ग के प्रकाशक होने से चक्षु-दाता हैं और सन्मार्ग पर लगाने से मार्गदाता हैं, बिना किसी भेद-भाव के प्राणीमात्र के शरणदाता हैं, जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाने के कारण अक्षय जीवन के दाता हैं, सम्यक् बोधि प्रदान करने वाले हैं, दुर्गतियों में गिरते हुए जीवों को बचाने के कारण धर्म-दाता हैं, सद्धर्म के उपदेशक हैं, धर्म के नायक हैं, धर्मरूप रथ के संचालन करने से धर्म के सारथी हैं । धर्मरूप चक्र के चतुर्दिशाओं में और चारों गतियों में प्रवर्तन करने से धर्मवर-चातुरन्त चक्रवर्ती हैं । प्रतिघात-रहित निरावरण श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक हैं । छद्म अर्थात् आवरण और छल-प्रपंच से सर्वथा निवृत्त होने के कारण व्यावृत्तछद्म हैं ।

विषय-कषायों को जीतने से स्वयं जिन हैं और दूसरों के भी विषय-कषायों के छुड़ाने से और उन पर विजय प्राप्त कराने का मार्ग बताने से ज्ञापक हैं या जय-प्रापक हैं । स्वयं संसार-सागर से उत्तीर्ण हैं और दूसरों के उतारक हैं । स्वयं बोध को प्राप्त होने से बुद्ध हैं और दूसरों को बोध देने से बोधक हैं । स्वयं कर्मों से मुक्त हैं और दूसरों के भी कर्मों के मोचक हैं । जो सर्व जगत के जानने से सर्वज्ञ और सर्वलोक के देखने से सर्वदर्शी हैं । जो अचल, अरुज, (रोग-रहित) अनन्त, अक्षय, अव्याबाध (बाधाओं से रहित) और पुनः आगमन से रहित ऐसी सिद्ध-गति नाम के अनुपम स्थान को प्राप्त करने वाले हैं । ऐसे उन भगवान महावीर ने यह द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक कहा है ।

वह इस प्रकार है–आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्या-प्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्त-कृतदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक-श्रुत और दृष्टिवाद ।

उस द्वादशांग श्रुतरूप गणिपिटक में यह समवायांग चौथा अंग कहा गया है, उसका अर्थ इस प्रकार है–आत्मा एक है, अनात्मा एक है, दण्ड एक है, अदण्ड एक है, क्रिया एक है, अक्रिया एक है, लोक एक है, अलोक एक है, धर्मास्तिकाय एक है, अधर्मास्तिकाय एक है, पुण्य एक है, पाप एक है, बन्ध एक है, मोक्ष एक है, आस्रव एक है, संवर एक है, वेदना एक है और निर्जरा एक है ।

जम्बूद्वीप नामक यह प्रथम द्वीप आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौड़ाई) की अपेक्षा शतसहस्र (एक

लाख) योजन विस्तीर्ण कहा गया है । सौधर्मेन्द्र का पालक नाम का यान (यात्रा के समय उपयोग में आने वाला पालक नाम के आभियोग्य देव की विक्रिया से निर्मित विमान) एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है । सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर महाविमान एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है ।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है । चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है । स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला कहा गया है ।

इसी रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है । असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक सागरोपम कही गई है। असुरकुमारेन्द्रों को छोड़कर शेष भवनवासी कितनेक देवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है । कितनेक असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है । कितनेक असंख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक संज्ञी मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम कही गई है ।

वाणव्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम कही गई है । ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष से अधिक एक पल्योपम कही गई है । सौधर्मकल्प में देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम कही गई है । सौधर्मकल्प में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है । ईशानकल्प में देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम कही गई है । ईशानकल्प में कितनेक देवों की स्थिति एक सागरोपम कही गई है ।

जो देव सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुषोत्तर और लोकहित नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम कही गई है । वे देव एक अर्धमास में (पन्द्रह दिन में) आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के एक हजार वर्ष में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो एक मनुष्य भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–२

सूत्र - २

दो दण्ड हैं, अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड । दो राशि हैं, जीवराशि और अजीवराशि । दो प्रकार के बंधन हैं, रागबंधन और द्वेषबंधन ।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है । पूर्वा-भाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र दो तारा वाला कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । इसी दूसरी पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति दो सागरोपम कही गई है ।

कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । असुरकुमारेन्द्रों को छोड़कर शेष भवन-वासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपम कही गई है । असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक कितने ही जीवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । असंख्यात वर्षायुष्क गर्भोपक्रान्तिक पंचेन्द्रिय संज्ञी कितनेक मनुष्यों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म कल्प में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति दो पल्योपम कही गई है । सौधर्म कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है । ईशान कल्प में देवो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई है । सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है । माहेन्द्रकल्प में देवों की जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम कही गई है ।

जो देव शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभ स्पर्श वाले सौधर्मावतंसक विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है । वे देव दो अर्धमासों में (एक मास में) आनप्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के दो हजार वर्ष में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो दो भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–३

सूत्र - ३

तीन दण्ड कहे गए हैं, जैसे–मनदंड, वचनदंड, कायदंड । तीन गुप्तियाँ कही गई हैं, जैसे–मनगुप्ति, वचन-गुप्ति, कायगुप्ति । तीन शल्य कहे गए हैं, जैसे–मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शन शल्य । तीन गौरव कहे गए हैं, जैसे–ऋद्धिगौरव, रसगौरव, सातागौरव । तीन विराधना कही गई हैं, जैसे–ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना, चारित्र-विराधना ।

मृगशिर नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है । पुष्य नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है । ज्येष्ठा नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है । अभिजित् नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है । श्रवण नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है। अश्विनी नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है । भरणी नक्षत्र तीन तारा वाला कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है । दूसरी शर्करा पृथ्वी में नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है । तीसरी वालुका पृथ्वी में नारकियों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है ।

कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तीन पल्योपम कही गई है । असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है । असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी गर्भोपक्रान्तिक मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम कही गई है ।

सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तीन सागरोपम कही गई है । जो देव आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक नाम वाले विशिष्ट विमानों से देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है । वे देव तीन अर्धमासों में (डेढ़ मास में) आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को तीन हजार वर्ष में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीन भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–४

सूत्र - ४

चार कषाय कहे गए हैं–क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय, लोभकषाय । चार ध्यान हैं–आर्तध्यान, रौद्र ध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान । चार विकथाएं हैं । जैसे–स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा । चार संज्ञाएं कही गई हैं । जैसे–आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा । चार प्रकार का बन्ध कहा गया है । जैसे–प्रकृतिबन्ध स्थितिबन्ध, अनुभावबन्ध, प्रदेशबन्ध । चार गव्यूति का एक योजन कहा गया है ।

अनुराधा नक्षत्र चार तार वाला कहा गया है । पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र चार तारा वाला कहा गया है । उत्तराषाढ़ा नक्षत्र चार तारा वाला कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है । तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति चार सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है । सौधर्म-ईशानकल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की है ।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चार सागरोपम है । इन कल्पों के जो देव कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टि–आवर्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टियुक्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृंग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट और कृष्टि-उत्तरावतंसक नाम वाले विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम कही गई है । वे देव चार अर्धमासों (दो मास) में आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के चार हजार वर्ष में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्य-सिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चार भवग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–५

सूत्र - ५

क्रियाएं पाँच कही गई हैं । जैसे–कायिकी क्रिया, आधिकरणिकी क्रिया, प्राद्वेषीकि क्रिया, पारितापनिकी क्रिया, प्राणातिपात क्रिया । पाँच महाव्रत कहे गए हैं । जैसे–सर्व प्राणातिपात से विरमण, सर्वमृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादन से विरमण, सर्व मैथुन से विरमण, सर्व परिग्रह से विरमण ।

इन्द्रियों के विषयभूत कामगुण पाँच कहे गए हैं । जैसे–श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द, चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप, रसनेन्द्रिय का विषय रस, घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्श ।

कर्मबंध के कारणों को आस्रवद्वार कहते हैं । वे पाँच हैं । जैसे–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग । कर्मों का आस्रव रोकने के उपायों को संवरद्वार कहते हैं । वे भी पाँच कहे गए हैं–सम्यक्त्व, विरति, अप्रमत्तता, अकषायता और अयोगता या योगों की प्रवृत्ति का निरोध । संचित कर्मों की निर्जरा के स्थान, कारण या उपाय पाँच कहे गए हैं । जैसे–प्राणा-तिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण ।

संयम की साधक प्रवृत्ति या यतनापूर्वक की जाने वाली प्रवृत्ति को समिति कहते हैं । वे पाँच कही गई हैं–गमनागमन में सावधानी रखना ईर्यासमिति है । वचन–बोलने में सावधानी रखकर हित मित प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है । गोचरी में सावधानी रखना और निर्दोष, अनुद्दिष्ट भिक्षा ग्रहण करना एषणासमिति है । संयम के साधक वस्त्र, पात्र, शास्त्र आदि के ग्रहण करने और रखने में सावधानी रखना आदानभांड-मात्र निक्षेपणा समिति है । उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) श्लेष्म (कफ) सिंघाण (नासिकामल) और जल्ल (शरीर का मैल) परित्याग करने में सावधानी रखना पाँचवी प्रतिष्ठापना समिति है ।

पाँच अस्तिकाय द्रव्य कहे गए हैं । जैसे–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ।

रोहिणी नक्षत्र पाँच तारा वाला कहा गया है । पुनर्वसु नक्षत्र पाँच तारा वाला कहा गया है । हस्त नक्षत्र पाँच तारा वाला कहा गया है । विशाखा नक्षत्र पाँच तारा वाला कहा गया है । धनिष्ठा नक्षत्र पाँच तारा वाला कहा गया है

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति पाँच पल्योपम कही गई है । तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति पाँच सागरोपम कही गई है । सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पाँच पल्योपम कही गई है ।

सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पाँच सागरोपम कही गई है । जो देव वात, सुवात, वातावर्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृंग, वातसृष्ट, वातकूट, वातोत्तरावतंसक, सूर, सूसूर, सूरावर्त्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृंग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पाँच सागरोपम कही गई है । वे देव पाँच अर्धमासों (ढ़ाई मास) में उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को पाँच हजार वर्ष में आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक ऐसे जीव हैं जो पाँच भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–६

सूत्र - ६

छह लेश्याएं कही गई हैं । जैसे–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या ।

(संसारी) जीवों के छह निकाय कहे गए हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय । छह प्रकार के बाहिरी तपःकर्म हैं । अनशन, ऊनोदर्य, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश और संलीनता । छह प्रकार के आभ्यन्तर तप हैं । प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ।

छह छाद्मस्थिक समुद्घात कहे गए हैं । जैसे–वेदना समुद्घात कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात और आहारक-समुद्घात ।

अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है । जैसे श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह ।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारा वाला है । आश्लेषा नक्षत्र तारा वाला है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है । तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति छह सागरोपम कही गई है । कितनेक असुर कुमारों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है। सौधर्म-ईशान कल्पों में कितने देवों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति छह सागरोपम है । उनमें जो देव स्वयम्भू, स्वयम्भूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघो, वीर, सुवीर, वीरगत, वीर-श्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरकांत, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति छह सागरोपम कही गई है । वे देव तीन मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के छह हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–७

सूत्र - ७

सात भयस्थान कहे गए हैं । जैसे–इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात् भय, आजीवभय, मरणभय और अश्लोकभय । सात समुद्घात कहे गए हैं, जैसे–वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवलिसमुद्घात ।

श्रमण भगवान महावीर सात रत्नि-हाथ प्रमाण शरीर से ऊंचे थे ।

इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गए हैं । जैसे–क्षुल्लहिमवंत, महाहिमवंत, निषध, नीलवंत, रूक्मी, शिखरी और मन्दर । इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात क्षेत्र हैं । जैसे–भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक्, ऐरण्यवत और ऐरवत ।

बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणमोह वीतराग मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का वेदन करते हैं ।

मघा नक्षत्र सात तारा वाला कहा गया है । कृत्तिका आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की और द्वार वाले कहे गए हैं पाठान्तर के अनुसार–अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्व दिशा की और द्वार वाले कहे गए हैं । मघा आदि सात नक्षत्र दक्षिण दिशा की ओर द्वार वाले कहे गए हैं । अनुराधा आदि सात नक्षत्र पश्चिम दिशा की ओर द्वार वाले कहे गए हैं । धनिष्ठा आदि सात नक्षत्र उत्तर दिशा की ओर द्वार वाले कहे गए हैं ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है । तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी में नारयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है । चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में नारकियों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है । सनत्कुमार कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है । माहेन्द्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है । ब्रह्मलोक में कितनेक देवों की स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम है । उनमें जो देव सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कांचनकूट और सनत्कुमारावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम है । वे देव साढ़े तीन मासों के बाद आण-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों की सात हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सात भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८

सूत्र - ८

आठ मदस्थान कहे गए हैं । जैसे–जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद । आठ प्रवचन-माताएं कही गई हैं । जैसे–ईयासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-मात्र निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल सिंधारण-परिष्ठापनासमिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ।

वाणव्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊंचे कहे गए हैं । (उत्तरकुरु में स्थित पार्थिव) जम्बूनामक सुदर्शन वृक्ष आठ योजन ऊंचा कहा गया है । (देवकुरु में स्थित) गरुड़ देव का आवासभूत पार्थिव कूटशाल्मली वृक्ष आठ योजन ऊंचा कहा गया है । जम्बूद्वीप की जगती (प्राकार के सामान वाली) आठ योजन ऊंची कही गई है।

केवलि समुद्घात आठ समय वाला कहा गया है, जैसे–केवलि भगवान प्रथम समय में दण्ड समुद्घात करते हैं, दूसरे समय में कपाट समुद्घात करते हैं, तीसरे समय में मन्थान समुद्घात करते हैं, चौथे समय में मन्थान के अन्तरालों को पूरते हैं, अर्थात् लोकपूरण समुद्घात करते हैं । पाँचवे समय में मन्थान के अन्तराल से आत्म-प्रदेशों का प्रतिसंहार (संकोच) करते हैं, छठे समय में मन्थानसमुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं, सातवे समय में कपाट समुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं और आठवे समय में दण्डसमुद्घात का प्रतिसंहार करते हैं । तत्पश्चात् उनके आत्मप्रदेश शरीरप्रमाण हो जाते हैं ।

पुरुषादानीय अर्थात् पुरुषों के द्वारा जिनका नाम आज भी श्रद्धा और आदर-पूर्वक स्मरण किया जाता है, ऐसे पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव के आठ गण और आठ गणधर थे । यथा–

सूत्र - ९

शुभ, शुभघोष, वशिष्ठ, ब्रह्मचारी, सोम, श्रीधर, वीरभद्र और यश ।

सूत्र - १०

आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्द योग करते हैं । जैसे–कृत्तिका १, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, मघा ४, चित्रा ५, विशाखा ६, अनुराधा ७ और ज्येष्ठा ८ ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है । चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति आठ पल्योपम कही है । सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति आठ पल्योपम कही गई है ।

ब्रह्मलोक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति आठ सागरोपम कही गई है । वहाँ जो देव अर्चि १, अर्चिमाली २, वैरोचन ३, प्रभंकर ४, चन्द्राभ ५, सूराभ ६, सुप्रतिष्ठाभ ७, अग्नि-अर्च्याभ ८, रिष्टाभ ९, अरुणाभ १०, और अनुत्तरावतंसक ११, नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम कही गई है । वे देव आठ अर्धमासों (पखवाड़ों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के आठ हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव आठ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९

सूत्र – ११, १२

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ (संरक्षिकाएं) कही गई हैं । जैसे–स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन का सेवन नहीं करना, स्त्रियों की कथाओं को नहीं करना, स्त्रीगणों का उपासक नहीं होना, स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों और रमणीय अंगों का द्रष्टा और ध्याता नहीं होना, प्रणीत-रस-बहुल भोजन का नहीं करना, अधिक मात्रा में खान-पान या आहार नहीं करना, स्त्रियों के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण नहीं करना, कामोद्दीपक शब्दों को नहीं सूनना, कामोद्दीपक रूपों को नहीं देखना, कामोद्दीपक गन्धों को नहीं सूँघना, कामो-द्दीपक रसों का स्वाद नहीं लेना, कामोद्दीपक रसों का स्वाद नहीं लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श नहीं करना और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख में प्रतिबद्ध (आसक्त) नहीं होना ।

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ (विनाशिकाएं) कही गई हैं । जैसे–स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन का सेवन करना १, स्त्रियों की कथाओं को कहना–स्त्रियों सम्बन्धी बातें करना २, स्त्रीगणों का उपासक होना ३, स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों और मनोरम अंगों को देखना और उनका चिन्तन करना ४, प्रणीत-रस-बहुल गरिष्ठ भोजन करना ५, अधिक मात्रा में आहार-पान करना ६, स्त्रियों के साथ की गई पूर्व रति और पूर्व क्रीड़ाओं का स्मरण करना ७, कामोद्दीपक शब्दों को सूनना, कामोद्दीपक रूपों को देखना, कामोद्दीपक गन्धों को सूँघना, कामोद्दीपक रसों का स्वाद लेना, कामोद्दीपक कोमल मृदुशय्यादि का स्पर्श करना ८ और सातावेदनीय के उदय से प्राप्त सुख में प्रतिबद्ध (आसक्त) होना ९ । नौ ब्रह्मचर्य अध्ययन कहे गए हैं । जैसे– शस्त्रपरिज्ञा १, लोकविजय २, शीतोष्णीय ३, सम्यक्त्व ४, आवन्ती ५, धूत ६, विमोह ७, उपधानश्रुत ८ और महापरिज्ञा ९ ।

सूत्र - १३

पुरुषादानीय पार्श्वनाथ तीर्थंकर नौ रत्नी (हाथ) ऊंचे थे ।

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त्त तक चन्द्रमा के साथ योग करता है । अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा का उत्तर दिशा की ओर से योग करते हैं । वे नौ नक्षत्र अभिजित् से लगाकर भरणी तक जानना चाहिए ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर अन्तर करके उपरितन भाग में ताराएं संचार करती हैं । जम्बूद्वीप नामक द्वीप में नौ योजन वाले मत्स्य भूतकाल में नदीमुखों से प्रवेश करते थे, वर्तमान में प्रवेश करते हैं और भविष्य में प्रवेश करेंगे । जम्बूद्वीप के विजय नामक पूर्व द्वार की एक-एक बाहु (भूजा) पर नौ-नौ भौम (विशिष्ट स्थान या नगर) कहे गए हैं ।

वाणव्यन्तर देवों की सुधर्मा नाम की सभाएं नौ योजन ऊंची कही हैं ।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ उत्तर प्रकृतियाँ हैं । निद्रा, प्रचला, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, चक्षुदर्श-नावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति नौ पल्योपम है । चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति नौ सागरोपम है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति नौ पल्योपम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति नौ पल्योपम है । ब्रह्मलोक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति नौ सागरोपम है । वहाँ जो देव पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्म-ध्वज, पक्ष्मशृंग, पक्ष्मसृष्ट, पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतंसक तथा सूर्य, सुसूर्य, सूर्यावर्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृंग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट, सूर्योत्तरावतंसक, (रुचिर) रुचिरावर्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त, रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृंग, रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट और रुचिरोत्तरावतंसक नाम वाले विमानों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति नौ सागरोपम कही गई है । वे देव नौ अर्धमासों (साढ़े चार मासों) के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को नौ हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो नौ भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१०

सूत्र - १४

श्रमण धर्म दस प्रकार का कहा गया है । जैसे–क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास ।

चित्त-समाधि के दश स्थान कहे गए हैं । जैसे–जो पूर्व काल में कभी उत्पन्न नहीं हुई, ऐसी सर्वज्ञ-भाषित श्रुत और चारित्ररूप धर्म को जानने की चिन्ता का उत्पन्न होना यह चित्त की समाधि या शान्ति के उत्पन्न होने का पहला स्थान है (१) । जैसा पहले कभी नहीं देखा, ऐसे यथातथ्य स्वप्न का देखना चित्त-समाधि का दूसरा स्थान है (२) । जैसा पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा पूर्व भव का स्मरण करने वाला संज्ञिज्ञान होना यह चित्त-समाधि का तीसरा स्थान है । पूर्व भव का स्मरण होने पर संवेग और निर्वेद के साथ चित्त में परम प्रशमभाव जागृत होता है (३) । जैसा पहले कभी नहीं हुआ, ऐसा देव-दर्शन होना, देवों की दिव्य वैभव-परिवार आदिरूप ऋद्धि का देखना, देवों की दिव्य द्युति (शरीर और आभूषणादि की दीप्ति) का देखना और दिव्य देवानुभाव (उत्तम विक्रियादि के प्रभाव) को देखना यह चित्त-समाधि का चौथा स्थान है, क्योंकि ऐसा देव-दर्शन होने पर धर्म में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है (४) । जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक प्रत्यक्ष जानने वाला अवधिज्ञान उत्पन्न होना वह चित्त-समाधि का पाँचवा स्थान है । अवधिज्ञान के उत्पन्न होने पर मन में एक अपूर्व शान्ति और प्रसन्नता प्रकट होती है (५) ।

जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला अवधिदर्शन उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का छठा स्थान है (६) । जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा (अढ़ाई द्वीप-समुद्रवर्ती संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक) जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का सातवा स्थान है (७) । जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा सम्पूर्ण लोक को प्रत्यक्ष (त्रिकालवर्ती पर्यायों के साथ) जानने वाला केवलज्ञान उत्पन्न होना यह चित्त-समाधि का आठवा स्थान हे (८) । जो पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा (सर्व चराचर) लोक को देखने वाला केवल-दर्शन उत्पन्न होना, यह चित्त-समाधि का नौवा स्थान है (९) । सर्व दुःखों के विनाशक केवलिमरण से मरना यह चित्त-समाधि का दशवा स्थान है (१०) ।

इसके होने पर यह आत्मा सर्व सांसारिक दुःखों से मुक्त हो सिद्ध बुद्ध होकर अनन्त सुख को प्राप्त हो जाता है ।

मन्दर (सुमेरु) पर्वत मूल में दश हजार योजन विष्कम्भ (विस्तार) वाला कहा गया है ।

अरिष्टनेमि तीर्थंकर दश धनुष ऊंचे थे । कृष्ण वासुदेव दश धनुष ऊंचे थे । राम बलदेव दश धनुष ऊंचे थे ।

सूत्र - १५

दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गए हैं, यथा–मृगशिर, आर्द्रा, पुष्य, तीनों पूर्वाएं (पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपदा) मूल, आश्लेषा, हस्त और चित्रा ।

सूत्र - १६

अकर्मभूमिज मनुष्यों के उपभोग के लिए दश प्रकार के वृक्ष (कल्पवृक्ष) उपस्थित रहते हैं । जैसे–

सूत्र - १७

मद्यांग, भृंग, तूर्यांग, दीपांग, ज्योतिरंग, चित्रांग, चित्तरस, मण्यंग, गेहाकार और अनग्नांग ।

सूत्र - १८

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है । इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितनेक नारकों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है । चौथी नरक पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं । चौथी पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति दस सागरोपम की होती है । पाँचवी पृथ्वी में किन्हीं-किन्हीं नारकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम कही गई है ।

कितनेक असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है । असुरेन्द्रों को छोड़कर कितनेक शेष भवनवासी देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की

स्थिति दश पल्योपम कही गई है । बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है । कितनेक वाणव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति दश पल्योपम कही गई है । ब्रह्मलोक कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है । लान्तककल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम कही गई है । वहाँ जो देव घोष, सुघोष, महाघोष, नन्दिघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक्, रमणीय, मंगलावर्त और ब्रह्म-लोकावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम कही गई है । वे देव दश अर्धमासों (पाँच मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं, उन देवों के दश हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो दश भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण प्राप्त करेंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-११

सूत्र - १९

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उपासकों श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाएं कही गई हैं । जैसे–दर्शन श्रावक १, कृतव्रत-कर्मा २, सामायिककृत ३, पौषधोपवास-निरत ४, दिवा ब्रह्मचारी, रात्रि-परिमाणकृत ५, दिवा ब्रह्मचारी भी, रात्रि-ब्रह्मचारी भी, अस्नायी, विकट-भोजी और मौलिकृत ६, सचित्तपरिज्ञात ७, आरम्भपरिज्ञात ८, प्रेष्य-परिज्ञात ९, उद्दिष्टपरिज्ञात १० और श्रमणभूत ११ ।

लोकान्त से एक सौ ग्यारह योजन के अन्तराल पर ज्योतिष्चक्र अवस्थित कहा गया है । जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस योजन के अन्तराल पर ज्योतिष्चक्र संचार करता है ।

श्रमण भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे–इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्म, मंडित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास ।

मूल नक्षत्र ग्यारह तारा वाला कहा गया है । अधस्तन ग्रैवेयक-देवों के विमान एक सौ ग्यारह कहे गए हैं । मन्दर पर्वत धरणी-तल से शिखर तल पर ऊंचाई की अपेक्षा ग्यारहवें भाग से हीन विस्तार वाला कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति ग्यारह सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम है । लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम है । वहाँ पर जो देव ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्म-ध्वज, ब्रह्मशृंग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम है । वे देव ग्यारह अर्धमासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को ग्यारह हजार वर्ष के बाद आहार की ईच्छा होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो ग्यारह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-११ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१२

सूत्र - २०

बारह भिक्षु-प्रतिमाएं कही गई हैं । जैसे–एकमासिकी भिक्षुप्रतिमा, दो मासिकी भिक्षुप्रतिमा, तीन मासिकी भिक्षुप्रतिमा, चार मासिकी भिक्षुप्रतिमा, पाँच मासिकी भिक्षुप्रतिमा, छह मासिकी भिक्षुप्रतिमा, सात मासिकी भिक्षुप्रतिमा, प्रथम सप्तरात्रिदिवा भिक्षुप्रतिमा, द्वीतिय सप्तरात्रि-दिवा प्रतिमा, तृतीय सप्तरात्रि दिवा प्रतिमा, अहोरात्रिक भिक्षुप्रतिमा और एकरात्रिक भिक्षुप्रतिमा ।

सूत्र – २१. २२

सम्भोग बारह प्रकार का है–१. उपधि-विषयक सम्भोग, २. श्रुत-विषयक सम्भोग, ३. भक्त-पान विषयक सम्भोग, ४. अंजली-प्रग्रह सम्भोग, ५. दान-विषयक सम्भोग, ६. निकाचन-विषयक सम्भोग, ७. अभ्युत्थान-विषयक सम्भोग । ८. कृतिकर्म-करण सम्भोग, ९. वैयावृत्य-करण सम्भोग, १०. समवसरण-सम्भोग, ११. संनिषद्या-सम्भोग और १२. कथा-प्रबन्धन सम्भोग ।

सूत्र – २३, २४

कृतिकर्म बारह आवर्त वाला कहा गया है । जैसे–कृतिकर्म में दो अवनत (नमस्कार), यथाजात रूप का धारण, बारह आवर्त, चार शिरोनति, तीन गुप्ति, दो प्रवेश और एक निष्क्रमण होता है ।

सूत्र - २५

जम्बूद्वीप के पूर्वदिशावर्ती विजयद्वार के स्वामी विजयदेव की विजया राजधानी बारह लाख योजन आयाम -विष्कम्भ वाली है । राम नाम के बलदेव बारह सौ वर्ष पूर्ण आयु का पालन कर देवत्व को प्राप्त हुए । मन्दर पर्वत की चूलिका मूल में बारह योजन विस्तार वाली है । जम्बूद्वीप की वेदिका मूल में बारह योजन विस्तार वाली है ।

सर्व जघन्य रात्रि (सब से छोटी रात) बारह मुहूर्त्त की होती है । इसी प्रकार सबसे छोटा दिन भी बारह मुहूर्त्त का जानना चाहिए ।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान की उपरिम स्तूपिका (चूलिका) से बारह योजन ऊपर ईषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी कही गई है । ईषत् प्राग्भार पृथ्वी के बारह नाम कहे गए हैं । जैसे–ईषत् पृथ्वी, ईषत् प्राग्भार पृथ्वी, तनु पृथ्वी, तनु-तरी पृथ्वी, सिद्ध पृथ्वी, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय, ब्रह्म, ब्रह्मावतंसक, लोकप्रतिपूरणा और लोकाग्रचूलिका ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति बारह सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बारह पल्योपम कही गई है । लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति बारह सागरोपम है । वहाँ जो देव माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कम्बु, कम्बुग्रीव, पुंख, सुपुंख, महापुंख, पुंड, सुपुंड, महापुंड, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम कही गई है । वे देव छह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के बारह हजार वर्ष के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१३

सूत्र - २६

तेरह क्रियास्थान कहे गए हैं । जैसे–अर्थदंड, अनर्थदंड, हिंसादंड, अकस्माद् दंड, दृष्टिविपर्यास दंड, मृषावाद प्रत्यय दंड, अदत्तादान प्रत्यय दंड, आध्यात्मिक दंड, मानप्रत्यय दंड, मित्रद्वेषप्रत्यय दंड, मायाप्रत्यय दंड, लोभप्रत्यय दंड और ईर्यापथिक दंड ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में तेरह विमान-प्रस्तट हैं । सौधर्मावतंसक विमान साढ़े बारह लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला है । इसी प्रकार ईशानावतंसक विमान भी जानना । जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की जाति कुलकोटियाँ साढ़े बारह लाख हैं ।

प्राणायु नामक बारहवें पूर्व के तेरह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गए हैं ।

गर्भज पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक जीवों में तेरह प्रकार के योग या प्रयोग होते हैं । जैसे–सत्य मनःप्रयोग, मृषा मनःप्रयोग, सत्यमृषामनःप्रयोग, असत्यामृषामनःप्रयोग, सत्यवचनप्रयोग, मृषावचनप्रयोग, सत्यमृषावचनप्रयोग, असत्यामृषावचनप्रयोग, औदारिकशरीरकायप्रयोग, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग, वैक्रियशरीरकायप्रयोग, वैक्रिय-मिश्रशरीरकायप्रयोग और कार्मणशरीरकायप्रयोग ।

सूर्यमंडल एक योजन के इकसठ भागों में से तेरह भाग (से न्यून अर्थात्) ४८/६१ योजन के विस्तार वाला कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तेरह पल्योपम कही गई है ।

लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति तेरह सागरोपम है । वहाँ जो देव वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त (वज्रप्रभ), वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्ररूप, वज्रशृंग, वज्रसृष्ट, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक, वइर, वइरावर्त, वइरप्रभ, वइरकान्त, वइरवर्ण, वइरलेश्य, वइररूप, वइरशृंग, वइरसृष्ट, वइरकूट, वइरोत्तरावतंसक, लोक, लोकावर्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकरूप, लोकशृंग, लोकसृष्ट, लोककूट और लोकोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम कही गई है । वे तेरह अर्धमासों के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के तेरह हजार वर्ष के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तेरह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१४

सूत्र - २७

चौदह भूतग्राम (जीवसमास) कहे गए हैं । जैसे–सूक्ष्म अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, सूक्ष्म पर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय, बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय असंज्ञी अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय संज्ञी अपर्याप्तक और पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक ।

चौदह पूर्व कहे गए हैं, जैसे–

सूत्र – २८-३०

उत्पाद पूर्व, अग्रायणीय पूर्व, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्ति प्रवाद, ज्ञानप्रवाद–पूर्व । सत्य प्रवाद–पूर्व, आत्मप्रवाद–पूर्व, कर्मप्रवाद–पूर्व, प्रत्याख्यानप्रवाद–पूर्व । विद्यानुवाद–पूर्व, अबन्ध्य–पूर्व, प्राणवाय–पूर्व, क्रियाविशाल–पूर्व तथा लोकबिन्दुसार–पूर्व ।

सूत्र - ३१

अग्रायणीय पूर्व के वस्तु नामक चौदह अर्थाधिकार कहे गए हैं ।

श्रमण भगवान महावीर की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा चौदह हजार साधुओं की थी ।

कर्मों की विशुद्धि की गवेषणा करने वाले उपायों की अपेक्षा चौदह जीवस्थान हैं । मिथ्यादृष्टि स्थान, सासादन सम्यग्दृष्टि स्थान, सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि स्थान, विरताविरत स्थान, प्रमत्तसंयत स्थान, अप्रमत्तसंयत स्थान, निवृत्तिबादर स्थान, अनिवृत्तिबादर स्थान, सूक्ष्मसम्पराय उपशामक और क्षपक स्थान, उप-शान्तमोह स्थान, क्षीणमोह स्थान, सयोगिकेवली स्थान और अयोगिकेवली स्थान ।

भरत और ऐरवत क्षेत्र की जीवाएं प्रत्येक चौदह हजार चार सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग प्रमाण लम्बी कही गई हैं ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के चौदह-चौदह रत्न होते हैं । जैसे–स्त्रीरत्न, सेनापतिरत्न, गृहपतिरत्न, पुरोहितरत्न, अश्वरत्न, हस्तिरत्न, असिरत्न, दंडरत्न, चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, मणिरत्न और काकिणिरत्न ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चौदह महानदियाँ पूर्व और पश्चिम दिशा से लवणसमुद्र में जाकर मिलती हैं । जैसे–गंगा-सिन्धु, रोहिता-रोहितांसा, हरी-हरिकान्ता, सीता-सीतोदा, नरकान्ता-नारीकान्ता, सुवर्ण-कूला–रूप्यकुला, रक्ता और रक्तवती ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति चौदह पल्योपम कही गई है । पाँचवी पृथ्वी में किन्हीं-किन्हीं नारकों की स्थिति चौदह सागरोपम की है । किन्हीं-किन्हीं असुरकुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम है ।

सौधर्म और ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति चौदह पल्योपम है । लान्तक कल्प में कितनेक देवों की स्थिति चौदह सागरोपम है । महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम है । वहाँ जो देव श्रीकान्त श्रीमहित श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम है । वे देव सात मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को चौदह हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौदह भव ग्रहण कर सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१५

सूत्र – ३२-३४

पन्द्रह परमअधार्मिक देव कहे गए हैं–अम्ब, अम्बरिषी, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकाल ।असिपत्र, धनु, कुम्भ, वालुका, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष ।

सूत्र - ३५

नमि अर्हन् पन्द्रह धनुष ऊंचे थे ।

ध्रुवराहु कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन से चन्द्र लेश्या के पन्द्रहवे-पन्द्रहवे दीप्तिरूप भाग को अपने श्याम वर्ण से आवरण करता रहता है । जैसे–प्रतिपदा के दिन प्रथम भाग को, द्वीतिया के दिन द्वीतिय भाग को, तृतीया के दिन तीसरे भाग को, चतुर्थी के दिन चौथे भाग को, पंचमी के दिन पाँचवे भाग को, षष्ठी के दिन छठे भाग को, सप्तमी के दिन सातवे भाग को, अष्टमी के दिन आठवे भाग को, नवमी के दिन नौवे भाग को, दशमी के दिन दशवे भाग को, एकादशी के दिन ग्यारहवे भाग को, द्वादशी के दिन बारहवे भाग को, त्रयोदशी के दिन तेरहवे भाग को, चतुर्दशी के दिन चौदहवे भाग को और पन्द्रस (अमावस) के दिन पन्द्रहवे भाग को आवरण करके रहता है ।

वही ध्रुवराहु शुक्ल पक्ष में चन्द्र के पन्द्रहवे-पन्द्रहवे भाग को उपदर्शन कराता रहता है । जैसे प्रतिपदा के दिन पन्द्रहवे भाग को प्रकट करता है, द्वीतिया के दिन दूसरे पन्द्रहवे भाग को प्रकट करता है । इस प्रकार पूर्णमासी के दिन पन्द्रहवे भाग को प्रकट कर पूर्ण चन्द्र को प्रकाशित करता है ।

सूत्र - ३६

छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ संयोग करके रहने वाले कहे गए हैं । जैसे–शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा । ये छह नक्षत्र पन्द्रह मुहूर्त्त तक चन्द्र से संयुक्त रहते हैं ।

सूत्र - ३७

चैत्र और आसौज मास में दिन पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त्त का होता है । इसी प्रकार चैत्र और आसौज मास में रात्रि भी पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त्त की होती है ।

विद्यानुवाद पूर्व के वस्तु नामक पन्द्रह अर्थाधिकार कहे गए हैं ।

मनुष्यों के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं । जैसे–सत्यमनःप्रयोग, मृषामनःप्रयोग, सत्यमृषामनःप्रयोग, असत्यमृषामनःप्रयोग, सत्यवचनप्रयोग, मृषावचनप्रयोग, सत्यमृषावचनप्रयोग, असत्यामृषावचनप्रयोग, औदारिक-शरीरकायप्रयोग, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग, वैक्रियशरीरकायप्रयोग, वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग, आहारक-शरीरकायप्रयोग, आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग और कार्मणशरीरकायप्रयोग ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम कही गई है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की है ।

सौधर्म ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम है । महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम है । वहाँ जो देव नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृंग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट और नन्दोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम है । वे देव साढ़े सात मासों के बाद आन-प्राण-उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को पन्द्रह हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो पन्द्रह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१६

सूत्र - ३८

सोलह गाथा-षोडशक कहे गए हैं । जैसे–समय, वैतालीय, उपसर्ग परिज्ञा, स्त्री-परिज्ञा, नरकविभक्ति, महावीरस्तुति, कुशीलपरिभाषित, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, यथातथ्य, ग्रन्थ, यमकीय और सोलहवीं गाथा

कषाय सोलह कहे गए हैं । जैसे–अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी लोभ, अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध, अप्रत्याख्यानकषाय मान, अप्रत्याख्यानकषाय माया, अप्रत्याख्यानकषाय लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और संज्वलन लोभ ।

मन्दर पर्वत के सोलह नाम कहे गए हैं । जैसे–

सूत्र – ३९, ४०

१. मन्दर, २. मेरु, ३. मनोरम, ४. सुदर्शन, ५. स्वयम्प्रभ, ६. गिरिराज, ७. रत्नोच्चय, ८. प्रियदर्शन, ९. लोकमध्य, १०. लोकनाभि । ११. अर्थ, १२. सूर्यावर्त, १३. सूर्यावरण, १४. उत्तर, १५. दिशादि और १६. अवंतस ।

सूत्र - ४१

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा सोलह हजार श्रमणों की थी । आत्मप्रवाद पूर्व के वस्तु नामक सोलह अर्थाधिकार कहे गए हैं । चमरचंचा और बलीचंचा नामक राजधानियों के मध्य भाग में उतार-चढ़ाव रूप अवतारिकालयन वृत्ताकार वाले होने से सोलह हजार आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गए हैं । लवणसमुद्र के मध्य भाग में जल के उत्सेध की वृद्धि सोलह हजार योजन कही गई है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है । पाँचवी धूमप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सोलह पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सोलह पल्योपम है ।

महाशुक्र कल्प में कितनेक देवों की स्थिति सोलह सागरोपम है । वहाँ जो देव आवर्त, व्यावर्त, नन्द्यावर्त, महानन्द्यावर्त, अंकुश, अंकुशप्रलम्ब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम है । वे देव आठ मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को सोलह हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सोलह भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१७

सूत्र - ४२

सत्तरह प्रकार का असंयम है । पृथ्वीकाय-असंयम, अप्काय-असंयम, तेजस्काय-असंयम, वायुकाय-असंयम, वनस्पतिकाय-असंयम, द्वीन्द्रिय-असंयम, त्रीन्द्रिय-असंयम, चतुरिन्द्रिय-असंयम, पंचेन्द्रिय-असंयम, अजीवकाय-असंयम, प्रेक्षा-असंयम, उपेक्षा-असंयम, अपहृत्य-असंयम, अप्रमार्जना-असंयम, मनःअसंयम, वचन-असंयम, काय-असंयम ।

सत्तरह प्रकार का संयम कहा गया है । जैसे–पृथ्वीकाय-संयम, अप्काय-संयम, तेजस्काय-संयम, वायुकाय -संयम, वनस्पतिकाय-संयम, द्वीन्द्रिय-संयम, त्रीन्द्रिय-संयम, चतुरिन्द्रिय-संयम, पंचेन्द्रिय-संयम, अजीवकाय-संयम, प्रेक्षा-संयम, उपेक्षा-संयम, अपहृत्य-संयम, प्रमार्जना-संयम, मनःसंयम, वचन-संयम, काय-संयम ।

मानुषोत्तर पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचा कहा गया है । सभी वेलन्धर और अनुवेलन्धर नागराजों के आवास पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचे कहे गए हैं । लवणसमुद्र की सर्वाग्र शिखा सत्तरह हजार योजन ऊंची कही गई है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमि भाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन ऊपर जाकर तत्पश्चात् चारण ऋद्धिधारी मुनियों की नन्दीश्वर, रुचक आदि द्वीपों में जाने के लिए तिरछी गति होती है ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर का तिगिंछिकूट नामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचा कहा गया है । असुरेन्द्र बलि का रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत सत्तरह सौ इक्कीस योजन ऊंचा कहा गया है ।

मरण सत्तरह प्रकार का है । आवीचिमरण, अवधिमरण, आत्यन्तिकमरण, वलन्मरण, वशार्तमरण, अन्तः-शल्यमरण, तद्भवमरण, बालमरण, पंडितमरण, बालपंडितमरण, छद्मस्थमरण, केवलिमरण, वैहायसमरण, गृद्ध-स्पृष्ट या गृद्धपृष्ठमरण, भक्तप्रत्याख्यानमरण, इंगिनीमरण, पादपोपगमनमरण ।

सूक्ष्मसम्पराय भाव में वर्तमान सूक्ष्मसम्पराय भगवान केवल सत्तरह कर्म-प्रकृतियों को बाँधते हैं । जैसे–आभिनिबोधिकज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यवज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, यशस्कीर्तिनामकर्म, उच्चगोत्र, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

सहस्रार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति सत्तरह सागरोपम है । वहाँ जो देव, सामान, सुसामान, महासामान पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौण्डरीक, महापौण्डरीक, शुक्र, महाशुक्र, सिंह, सिंहकान्त, सिंहबीज और भावित नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम की होती है । वे देव साढ़े आठ मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के सत्तरह हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्तरह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१८

सूत्र - ४३

ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का है । औदारिक (शरीर वाले मनुष्य-तिर्यंचों के) कामभोगों को नहीं मन से स्वयं सेवन करता है, नहीं अन्य को मन से सेवन कराता है और न मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है । औदारिक-कामभोगों को नहीं वचन से स्वयं सेवन करता है, नहीं अन्य को वचन से सेवन कराता है और नहीं सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है । औदारिक-कामभोगों को नहीं स्वयं काय से सेवन करता है, नहीं अन्य को काय से सेवन कराता है और नहीं काय से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है । दिव्य काम-भोगों को नहीं स्वयं मन से सेवन करता है, नहीं अन्य को मन से सेवन कराता है और नहीं मन से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है । दिव्य कामभोगों को नहीं स्वयं वचन से सेवन करता है, नहीं अन्य को वचन से सेवन कराता है और नहीं सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना करता है । दिव्य कामभोगों को नहीं स्वयं काय से सेवन करता है, नहीं अन्य को काय से सेवन कराता है और नहीं काय से सेवन करते हुए अन्य की अनुमोदना करता है ।

अरिष्टनेमि अर्हन्त की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा अठारह हजार साधुओं की थी । श्रमण भगवान महावीर ने सक्षुद्रक-व्यक्त-सभी श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अठारह स्थान कहे हैं ।

सूत्र - ४४

व्रतषट्क, कायषट्क, अकल्प, गृहिभाजन, पर्यंक, निषद्या, स्नान और शरीर शोभा का त्याग ।

सूत्र - ४५

चूलिका-सहित भगवद-आचाराङ्ग सूत्र पद-प्रमाण से अठारह हजार पद हैं ।

ब्राह्मीलिपि के लेखन-विधान अठारह प्रकार के कहे गए हैं । जैसे–ब्राह्मीलिपि, यावनीलिपि, दोषउपरिकालिपि, खरोष्ट्रिकालिपि, खर-शाविकालिपि, प्रहारातिकालिपि, उच्चत्तरिकालिपि, अक्षरपृष्ठिकालिपि, भोगवतिकालिपि, वैणकियालिपि, निह्नविकालिपि, अंकलिपि, गणितलिपि, गन्धर्वलिपि (भूतलिपि), आदर्शलिपि, माहेश्वरीलिपि, दामिलिपि, पोलिन्दीलिपि ।

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के अठारह वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गए हैं ।

धूमप्रभा नामक पाँचवी पृथ्वी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन है ।

पौष और आषाढ़ मास में एक बार उत्कृष्ट रात और दिन अठारह मुहूर्त्त के होते हैं ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति अठारह पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति अठारह पल्योपम है । सहस्रार कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम है । आनत कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम है । वहाँ जो देव काल, सुकाल, महाकाल, अंजन, रिष्ट, साल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुण्डरीक, पुण्डरीकगुल्म और सहस्रारावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति अठारह सागरोपम कही गई है । वे देव नौ मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के अठारह हजार वर्ष के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अठारह भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१९

सूत्र – ४६-४८

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र के (प्रथम श्रुतस्कन्ध के) उन्नीस अध्ययन कहे गए हैं । जैसे–१. उत्क्षिप्तज्ञात, २. संघाट, ३. अंड, ४. कूर्म, ५. शैलक, ६. तुम्ब, ७. रोहिणी, ८. मल्ली, ९. माकंदी, १०. चन्द्रिमा । ११. दावद्रव, १२. उदकज्ञात, १३. मंडूक, १४. तेतली, १५. नन्दिफल, १६. अपरकंका, १७. आकीर्ण, १८. सुंसुमा और १९. पुण्डरीकज्ञात ।

सूत्र - ४९

जम्बूद्वीप में सूर्य उत्कृष्ट एक हजार नौ सौ योजन ऊपर और नीचे तपते हैं ।

शुक्र महाग्रह पश्चिम दिशा से उदित होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ सहगमन करता हुआ पश्चिम दिशा में अस्तगत होता है ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की कलाएं उन्नीस छेदनक (भागरूप) कही गई हैं ।

उन्नीस तीर्थंकर अगार-वास में रहकर फिर मुंडित होकर अगार से अनगार प्रव्रज्या को प्राप्त हुए–गृहवास त्यागकर दीक्षित हुए ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम है । आनत कल्प में कितनेक देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम है । प्राणत कल्प में कितनेक देवों की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है। वहाँ जो देव आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, सुषिर, इन्द्र, इन्द्रकान्त और इन्द्रोत्तरावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम कही गई है । वे देव साढ़े नौ मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के उन्नीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उन्नीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-१९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२०

सूत्र - ५०

बीस असमाधिस्थान हैं । १. दव-दव करते हुए जल्दी-जल्दी चलना, २. अप्रमार्जितचारी होना, ३. दुष्प्रमार्जितचारी होना, ४. अतिरिक्त शय्या-आसन रखना, ५. रात्निक साधुओं का पराभव करना, ६. स्थविर साधुओं को दोष लगाकर उनका उपघात या अपमान करना, ७. भूतों (एकेन्द्रिय जीवों) का व्यर्थ उपघात करना, ८. सदा रोष-युक्त प्रवृत्ति करना, ९. अतिक्रोध करना, १०. पीठ पीछे दूसरे का अवर्णवाद करना, ११. सदा ही दूसरों के गुणों का विलोप करना, जो व्यक्ति दास या चोर नहीं है, उसे दास या चोर आदि कहना, १२. नित्य नए अधिकरणों को उत्पन्न करना ।

१३. क्षमा किये हुए या उपशान्त हुए अधिकरणों को पुनः पुनः जागृत करना, १४. सरजस्क हाथ-पैर रखना, सरजस्क हाथ वाले व्यक्ति से भिक्षा ग्रहण करना और सरजस्क स्थण्डिल आदि पर चलना, सरजस्क आसनादि पर बैठना, १५. अकाल में स्वाध्याय करना और काल में स्वाध्याय नहीं करना, १६. कलह करना, १७. रात्रि में उच्च स्वर से स्वाध्याय और वार्तालाप करना, १८. गण या संघ में फूट डालने वाले वचन बोलना, १९. सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक खाते-पीते रहना तथा २०. एषणासमिति का पालन नहीं करना और अनैषणीय भक्त-पान को ग्रहण करना ।

मुनिसुव्रत अर्हत् बीस धनुष ऊंचे थे । सभी घनोदधिवातवलय बीस हजार योजन मोटे कहे गए हैं । प्राणत देवराज देवेन्द्र के सामानिक देव बीस हजार कहे गए हैं । नपुंसक वेदनीय कर्म की, नवीन कर्मबन्ध की अपेक्षा स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम कही गई है । प्रत्याख्यान पूर्व के बीस वस्तु नामक अर्थाधिकार कहे गए हैं । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मंडल (आर-चक्र) बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल परिमित कहा गया है । अभिप्राय यह है कि दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का अवसर्पिणी काल मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कालचक्र कहलाता है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति बीस पल्योपम कही गई है । छठी तमःप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति बीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बीस पल्योपम है । प्राणत कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम है । आरण कल्प में देवों की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम है । वहाँ जो देव सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, भित्तिल, तिगिंछ, दिशासौवस्तिक, प्रलम्ब, रुचिर, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त्त, पुष्पप्रभ, पुष्पदकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसिद्ध (पुष्पसृष्ट) और पुष्पोत्तरावतंसक नाम के विशिष्ट विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम है । वे देव दश मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों की बीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परमनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२१

सूत्र - ५१

इक्कीस शबल हैं (जो दोष रूप क्रिया-विशेषों के द्वारा अपने चारित्र को शबल कर्बुरित, मलिन या धब्बों से दूषित करते हैं) १. हस्त-मैथुन करने वाला शबल, २. स्त्री आदि के साथ मैथुन करने वाला शबल, ३. रात में भोजन करने वाला शबल, ४. आधाकर्मिक भोजन को सेवन करने वाला शबल, ५. सागारिक का भोजन-पिंड ग्रहण करने वाला शबल, ६. औद्देशिक, बाजार से क्रीत और अन्यत्र से लाकर दिये गए भोजन को खाने वाला शबल, ७. बार-बार प्रत्याख्यान कर पुनः उसी वस्तु को सेवन करने वाला शबल, ८. छह मास के भीतर एक या दूसरे गण में जाने वाला शबल, ९. एक मास के भीतर तीन बार नाभिप्रमाण जल में प्रवेश करने वाला शबल, १०. एक मास के भीतर तीन बार मायास्थान को सेवन करने वाला शबल ।

११. राजपिण्ड खाने वाला शबल, १२. जान-बूझ कर पृथ्वी आदि जीवों का घात करने वाला शबल, १३. जान-बूझ कर असत्य वचन बोलने वाला शबल, १४. जान-बूझ कर बिना दी (हुई) वस्तु को ग्रहण करने वाला शबल, १५. जान-बूझ कर अनन्तर्हित (सचित्त) पृथ्वी पर स्थान, आसन, कायोत्सर्ग आदि करने वाला शबल, १६. इसी प्रकार जान-बूझ कर सचेतन पृथ्वी, सचेतन शिला पर और कोलावास लकड़ी आदि पर स्थान, शयन, आसन आदि करने वाला शबल, १७. जीव-प्रतिष्ठित, प्राण-युक्त, सबीज, हरित-सहित, कीड़े-मकोड़े वाले, पनक, उदक, मृत्तिका कीड़ीनगरा वाले एवं इसी प्रकार के अन्य स्थान पर अवस्थान, शयन, आशनादि करने वाला शबल, १८. जान-बूझ कर मूल-भोजन, कन्द-भोजन, त्वक्-भोजन, प्रबाल-भोजन, पुष्प-भोजन, फल-भोजन और हरित-भोजन करने वाला शबल, १९. एक वर्ष के भीतर दश बार जलावगाहन या जल में प्रवेश करने वाला शबल, २०. एक वर्ष के भीतर दश बार मायास्थानों का सेवन करने वाला शबल और २१. बार-बार शीतल जल से व्याप्त हाथों से अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुओं को ग्रहण कर खाने वाला शबल ।

जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियों का क्षय कर दिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि अष्टम गुणस्थानवर्ती निवृत्तिबादर संयत के मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का सत्व कहा गया है । जैसे–अप्रत्याख्यान क्रोधकषाय, अप्रत्याख्यान मानकषाय, अप्रत्याख्यान मायाकषाय, अप्रत्याख्यान लोभकषाय, प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय, प्रत्याख्यानावरण मानकषाय, प्रत्याख्यानावरण मायाकषाय, प्रत्याख्यानावरण लोभ-कषाय, (संज्वलन क्रोधकषाय, संज्वलन मानकषाय, संज्वलन मायाकषाय, संज्वलन लोभकषाय) स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसकवेद, हास्य, अरति, रति, भय, शोक और दुगुंछा (जुगुप्सा) ।

प्रत्येक अवसर्पिणी के पाँचवे और छठे और इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गए हैं । जैसे–दुःषमा और दुःषम-दुःषमा । प्रत्येक उत्सर्पिणी के प्रथम और द्वीतिय और इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के काल वाले कहे गए हैं । जैसे–दुःषम-दुःषमा और दुःषमा ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है । छठी तमःप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम कही गई है । आरणकल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है । अच्युत कल्प में देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है । वहाँ जो देव श्रीवत्स, श्रीदामकाण्ड, मल्ल, कृष्ट, चापोन्नत और आरणावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की स्थिति इक्कीस सागरोपम कही गई है । वे देव इक्कीस अर्धमासों (साढ़े दस मासों) के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के इक्कीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इक्कीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२२

सूत्र - ५२

बाईस परीषह कहे गए हैं । जैसे–दिगिंछा (बुभुक्षा) परीषह, पिपासापरीषह, शीतपरीषह, उष्णपरीषह, दंशमशकपरीषह, अचेलपरीषह, अरतिपरीषह, स्त्रीपरीषह, चर्यापरीषह, निषद्यापरीषह, शय्यापरीषह, आक्रोश-परीषह, वधपरीषह, याचनापरीषह, अलाभपरीषह, रोगपरीषह, तृणस्पर्शपरीषह, जल्लपरीषह, सत्कार-पुरस्कार-परीषह, प्रज्ञापरीषह, अज्ञानपरीषह और अदर्शनपरीषह ।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अंग में बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रपरिपाटी से छिन्न-छेदनयिक हैं । बाईस सूत्र आजी-विकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्न-छेदनयिक हैं । बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से नयत्रिक-सम्बन्धी हैं । बाईस सूत्र चतुष्कनयिक हैं जो चार नयों की अपेक्षा से हैं ।

पुद्गल के परिणाम (धर्म) बाईस प्रकार के कहे गए हैं । जैसे–कृष्णवर्णपरिणाम, नीलवर्णपरिणाम, लोहित वर्णपरिणाम, हारिद्रवर्णपरिणाम, शुक्लवर्णपरिणाम, सुरभिगन्धपरिणाम, दुरभिगन्धपरिणाम, तिक्तरसपरिणाम, कटुरसपरिणाम, कषायरसपरिणाम, आम्लरसपरिणाम, मधुररसपरिणाम, कर्कशस्पर्शपरिणाम, मृदुस्पर्शपरिणाम, गुरुस्पर्शपरिणाम, लघुस्पर्शपरिणाम, शीतस्पर्शपरिणाम, उष्णस्पर्शपरिणाम, स्निग्धस्पर्शपरिणाम, रूक्षस्पर्शपरिणाम अगुरुलघुस्पर्शपरिणाम और गुरुलघुस्पर्शपरिणाम ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है । छठी तमःप्रभा पृथ्वी में नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है । अधस्तन सातवीं तमस्तमा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बाईस पल्योपम कही गई है।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बाईस पल्योपम है । अच्युत कल्प में देवों की (उत्कृष्ट) स्थिति बाईस सागरोपम है । अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम है । वहाँ जो देव महित, विसृहित (विश्रुत), विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक नाम के विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम है । वे देव ग्यारह मासों के बाद आनप्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के बाईस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भवसिद्धिक जीव बाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२३

सूत्र - ५३

सूत्रकृताङ्ग के तेईस अध्ययन हैं । समय, वैतालिक, उपसर्गपरिज्ञा, स्त्रीपरिज्ञा, नरकविभक्ति, महावीर-स्तुति, कुशीलपरिभाषित, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, याथातथ्य ग्रन्थ, यमतीत, गाथा, पुण्डरीक, क्रिया-स्थान, आहारपरिज्ञा, अप्रत्याख्यानक्रिया, अनगारश्रुत, आर्द्रीय, नालन्दीय ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में, इसी भारतवर्ष में, इसी अवसर्पिणी में तेईस तीर्थंकर जिनों को सूर्योदय के मुहूर्त्त में केवल-वर-ज्ञान और केवल-वर-दर्शन उत्पन्न हुए ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में इसी अवसर्पिणी काल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में ग्यारह अंगश्रुत के धारी थे । जैसे–अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति यावत् पार्श्वनाथ, महावीर । कौशलिक ऋषभ अर्हत् चतुर्दशपूर्वी थे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में इस अवसर्पिणी काल के तेईस तीर्थंकर पूर्वभव में मांडलिक राजा थे । जैसे–अजित, संभव, अभिनन्दन यावत् पार्श्वनाथ तथा वर्धमान । कौशलिक ऋषभ अर्हत् पूर्वभव में चक्रवर्ती थे ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति तेईस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तेईस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति तेईस पल्योपम है । अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक के देवों की जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम है । जो देव अधस्तन ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम है । वे देव साढ़े ग्यारह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के तेईस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं, जो तेईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२४

सूत्र - ५४

चौबीस देवाधिदेव कहे गए हैं । जैसे–ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत नमि, नेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान ।

क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वतों की जीवाएं चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन और एक योजन के अड़तीस भागों में से एक भाग से कुछ अधिक लम्बी है ।

चौबीस देवस्थान इन्द्र-सहित कहे गए हैं । शेष देवस्थान इन्द्र-रहित, पुरोहित-रहित हैं और वहाँ के देव अहमिन्द्र कहे जाते हैं ।

उत्तरायण-गत सूर्य चौबीस अंगुली वाली पौरुषी छाया को करक कर्क संक्रान्ति के दिन सर्वाभ्यन्तर मंडल से निवृत्त होता है । गंगा-सिन्धु महानदियाँ प्रवाह (उद्गम–) स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तार वाली कही गई हैं । रक्ता-रक्तवती महानदियाँ प्रवाह-स्थान पर कुछ अधिक चौबीस-चौबीस कोश विस्तार वाली कही गई हैं ।

रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति चौबीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्प में कितनेक देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम है । जो देव अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम है । वे देव बारह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को चौबीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो चौबीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२५

सूत्र - ५५

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के (द्वारा उपदिष्ट) पंचयाम की पच्चीस भावनाएं कही गई हैं । जैसे–(प्राणातिपात-विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएं–) १. ईर्यासमिति, २. मनोगुप्ति, ३. वचनगुप्ति, ४. आलोकितपान-भोजन, ५. आदानभांड-मात्रनिक्षेपणासमिति । (मृषावाद-विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएं–) १. अनुवीचिभाषण २. क्रोध-विवेक, ३.लोभ-विवेक, ४.भयविवेक, ५.हास्य-विवेक।(अदत्तादान-विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएं –) १.अवग्रह-अनुज्ञापनता, २.अवग्रहसीम-ज्ञापनता, ३.स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणता, ४.साधर्मिक अवग्रह-अनुज्ञा-पनता, ५.साधारण भक्तपान-अनुज्ञाप्य परिभुंजनता । (मैथुन-विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएं–) १.स्त्री-पशु-नपुंसक-संसक्त शयन-आसन वर्जनता, २.स्त्रीकथाविवर्जनता, ३.स्त्री इन्द्रिय-आलोकनवर्जनता, ४.पूर्वरत-पूर्व क्रीड़ा-अननुस्मरणता, ५.प्रणीत-आहारविवर्जनता।(परिग्रह-विरमण महाव्रत की पाँच भावनाएं) १. श्रोत्रेन्द्रिय-रागोपरति, २.चक्षुरिन्द्रिय-रागोपरति, ३.घ्राणेन्द्रिय-रागोपरति, ४.जिह्वेन्द्रिय-रागोपरति ५. स्पर्शनेन्द्रिय -रागोपरति ।

मल्ली अर्हन् पच्चीस धनुष ऊंचे थे । सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत पच्चीस धनुष ऊंचे कहे गए हैं । तथा वे पच्चीस कोश भूमि में गहरे कहे गए हैं । दूसरी पृथ्वी में पच्चीस लाख नारकावास कहे गए हैं ।

चूलिका-सहित भगवद्-आचाराङ्ग सूत्र के पच्चीस अध्ययन कहे गए हैं । जैसे–

सूत्र – ५६-५८

१. शस्त्रपरिज्ञा, २. लोकविजय, ३. शीतोष्णीय, ४. सम्यक्त्व, ५. आवन्ती, ६. धूत, ७. विमोह, ८. उपधान श्रुत, ९. महापरिज्ञा । १०. पिण्डैषणा, ११. शय्या, १२. ईर्या, १३. भाषाध्ययन, १४. वस्त्रैषणा, १५. पात्रैषणा, १६. अवग्रहप्रतिमा १७. स्थान, १८. निषीधिका, १९. उच्चारप्रस्रवण, २०. शब्द, २१. रूप, २२. परक्रिया, २३. अन्योन्य क्रिया, २४. भावना अध्ययन और २५. विमुक्ति अध्ययन ।

अन्तिम विमुक्ति अध्ययन निशीथ अध्ययन सहित पच्चीसवाँ है ।

सूत्र - ५९

संक्लिष्ट परिणाम वाले अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय जीव नामकर्म की पच्चीस उत्तर प्रकृतियों को बाँधते हैं । जैसे–तिर्यग्गतिनाम, विकलेन्द्रिय जातिनाम, औदारिकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, हुंडकसंस्थान नाम, औदारिकसाङ्गोपाङ्ग नाम, सेवार्त्तसंहनन नाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, तिर्यंचा-नुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, त्रसनाम, बादरनाम, अपर्याप्तकनाम, प्रत्येकशरीरनाम, अस्थिरनाम, अशुभ नाम, दुर्भगनाम, अनादेयनाम, अयशस्कीर्त्ति नाम और निर्माणनाम ।

गंगा-सिन्धु महानदियाँ पच्चीस कोश पृथुल (मोटी) घड़े के मुख-समान मुख में प्रवेश कर और मकर के मुख की जिह्वा के समान पनाले से नीकल कर मुक्तावली हार के आकार से प्रपातद्रह में गिरती है । इसी प्रकार रक्ता-रक्तवती महानदियाँ भी पच्चीस कोश पृथुल घड़े के मुख समान मुख में प्रवेश कर और मकर के मुख की जिह्वा के समान पनाले से नीकलकर मुक्तावली-हार के आकार से प्रपातद्रह में गिरती हैं ।

लोकबिन्दुसार नामक चौदहवें पूर्व के वस्तुनामक पच्चीस अर्थाधिकार कहे गए हैं ।

इस रत्नप्रभापृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी महातमः प्रभापृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति पच्चीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पमें कितनेक देवों की स्थिति २५ पल्योपम है । मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति २५ सागरोपम है । जो देव अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरोपम है । वे देव साढ़े बारह मासों के बाद आन-प्राण या श्वासोच्छ्वास लेते हैं । उन देवों के पच्चीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो पच्चीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे

समवाय-२५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२६

सूत्र - ६०

दशासूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध), (बृहत्) कल्पसूत्र और व्यवहारसूत्र के छब्बीस उद्देशनकाल कहे गए हैं । जैसे–दशासूत्र के दश, कल्पसूत्र के छह और व्यवहारसूत्र के दश ।

अभव्यसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के छब्बीस कर्मांश (प्रकृतियाँ) सता में कहे गए हैं । जैसे–मिथ्यात्व मोहनीय, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुष वेद, नपुंसकवेद, हास्य, अरति, रति, भय, शोक और जुगुप्सा ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवीं महातमःपृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति छब्बीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्प में रहने वाले कितनेक देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम है । मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम है । जो देव मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम है । वे देव तेरह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के छब्बीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भवसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो छब्बीस भव करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परि-निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्वदुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२७

सूत्र - ६१

अनगार-निर्ग्रन्थ साधुओं के सत्ताईस गुण हैं । जैसे–प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण, श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह, घ्राणेन्द्रिय-निग्रह, जिह्वेन्द्रिय-निग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह, क्रोधविवेक, मानविवेक, मायाविवेक, लोभविवेक, भावसत्य, करणसत्य, योगसत्य, क्षमा, विरागता, मनःसमाहरणता, वचनसमाहरणता, कायसमाहरणता, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, वेदनातिसहनता और मारणान्तिकातिसहनता ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर शेक्ष नक्षत्रों के द्वारा मास आदि का व्यवहार प्रवर्तता है । नक्षत्र मास सत्ताईस दिन-रात की प्रधानता वाला कहा गया है । सौधर्म-ईशान कल्पों में उनके विमानों की पृथ्वी सत्ताईस सौ योजन मोटी कही गई है ।

वेदक सम्यक्त्व के बन्ध रहित जीव के मोहनीय कर्म को सत्ताईस प्रकृतियों की सत्ता कही गई है । श्रावण सुदी सप्तमी के दिन सूर्य सत्ताईस अंगुल की पौरुषी छाया करके दिवस क्षेत्र (सूर्य से प्रकाशित आकाश) की ओर लौटता हुआ और रजनी क्षेत्र (प्रकाश की हानि करता और अन्धकार को) बढ़ाता हुआ संचार करता है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है । अधस्तन सप्तम महातमः प्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है । मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है । जो देव मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है । ये देव साढ़े तेरह मासों के बाद आन-प्राण अर्थात् उच्छ्वास निःश्वास लेते हैं। उन देवों को सत्ताईस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो सत्ताईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय–२८

सूत्र - ६२

आचारप्रकल्प अट्ठाईस प्रकार का है । मासिकी आरोपणा, सपंचरात्रिमासिकी आरोपणा, सदशरात्रि-मासिकी आरोपणा, सपंचदशरात्रिमासिकी आरोपणा, सविशतिरात्रिकोमासिकी आरोपणा, सपंचविशत्तिरात्रि-मासिकी आरोपणा । इसी प्रकार छ द्विमासिकी आरोपणा, ६ त्रिमासिकी आरोपणा, ६ चतुर्मासिकी आरोपणा, उपघातिका आरोपणा, अनुपघातिका आरोपणा, कृत्स्ना आरोपणा, अकृत्स्ना आरोपणा, यह अट्ठाईस प्रकार का आचारप्रकल्प है । आचरित दोष की शुद्धि न हो जावे तब तक यह–आचारणीय है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता कही गई है । जैसे–सम्य-क्त्ववेदनीय, मिथ्यात्ववेदनीय, सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीय, सोलहकषाय और नौ नोकषाय ।

आभिनिबोधिकज्ञान अट्ठाईस प्रकार का कहा गया है । जैसे–श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह, श्रोत्रेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-व्यंजनावग्रह, श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, चक्षुरिन्द्रिय-ईहा, घ्राणेन्द्रिय-ईहा, जिह्वेन्द्रिय-ईहा, स्पर्शनेन्द्रिय-ईहा, नोइन्द्रिय-ईहा, श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, चक्षुरिन्द्रिय-अवाय, घ्राणेन्द्रिय-अवाय, जिह्वेन्द्रिय-अवाय, स्पर्शनेन्द्रिय-अवाय, नोइन्द्रिय-अवाय, श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, चक्षुरिन्द्रिय-धारणा, घ्राणेन्द्रिय-धारणा, जिह्वेन्द्रिय-धारणा, स्पर्शनेन्द्रिय-धारणा और नोइन्द्रिय धारणा ।

ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमानावास कहे गए हैं ।

देवगति को बाँधने वाला जीव नामकर्म की अट्ठाईस उत्तरप्रकृतियों को बाँधता है । वे इस प्रकार हैं–देव-गतिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम, वैक्रियशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मरगशरीरनाम, समचतुरस्रसंस्थाननाम, वैक्रिय-शरीराङ्गोपाङ्गनाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, देवानुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, पराघात-नाम, उच्छ्वासनाम, प्रशस्त विहायोगतिनाम, त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिर-अस्थिर नामों में से कोई एक, शुभ-अशुभ नामों में से कोई एक, आदेय-अनादेय नामों में से कोई एक, सुभगनाम, सुस्वर-नाम, यशस्कीर्त्तिनाम और निर्माण नाम । इसी प्रकार नरकगति को बाँधने वाला जीव भी नामकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों को बाँधता है । किन्तु वह प्रशस्त प्रकृतियों के स्थान पर अप्रशस्त प्रकृतियों को बाँधता है । जैसे–अप्रशस्त विहायोगतिनाम, हुंडकसंस्थाननाम, अस्थिरनाम, दुर्भगनाम, अशुभनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम, अयशस्कीर्त्तिनाम और निर्माणनाम ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति अट्ठाईस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमारों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम है ।

उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक विमानवासी देवों की जघन्य स्थिति अट्ठाईस सागरोपम है । जो देव मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति अट्ठाईस सागरोपम है । वे देव चौदह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों को अट्ठाईस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो अट्ठाईस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-२९

सूत्र - ६३

पापश्रुतप्रसंग-पापों के उपार्जन करने वाले शास्त्रों का श्रवण-सेवन उनतीस प्रकार का है । जैसे–भौमश्रुत, उत्पातश्रुत, स्वप्नश्रुत, अन्तरिक्षश्रुत, अंगश्रुत, स्वरश्रुत, व्यंजनश्रुत, लक्षणश्रुत । भौमश्रुत तीन प्रकार का है, जैसे–सूत्र, वृत्ति और वार्तिक । इन तीन भेदों से उपर्युक्त भौम, उत्पात आदि आठों प्रकार के श्रुत के चौबीस भेद होते हैं। विकथानुयोगश्रुत, विद्यानुयोगश्रुत, मंत्रानुयोगश्रुत, योगानुयोगश्रुत और अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग ।

आषाढ़ मास रात्रि-दिन की गणना की अपेक्षा उनतीस रात-दिन का कहा गया है । (इसी प्रकार) भाद्रपद-मास, कार्तिक मास, पौष मास, फाल्गुन मास और वैशाख मास भी उनतीस-उतनीस रात-दिन के कहे गए हैं । चन्द्र दिन मुहूर्त्त गणना की अपेक्षा कुछ अधिक उनतीस मुहूर्त्त का कहा गया है ।

प्रशस्त अध्यवसान (परिणाम) से युक्त सम्यग्दृष्टि भव्य जीव तीर्थंकरनाम-सहित नामकर्म की उनतीस प्रकृतियों को बाँधकर नियम से वैमानिक देवों में देवरूप से उत्पन्न होता है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति उनतीस सागरोपम की है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम है । उपरिम-मध्यमग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम है । जो देव उपरिम-अधस्तनग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम है । वे देव उनतीस अर्धमासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के उनतीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो उनतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-२९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३०

सूत्र - ६४

मोहनीय कर्म बंधने के कारणभूत तीस स्थान कहे गए हैं । जैसे–

सूत्र - ६५

जो कोई व्यक्ति स्त्री-पशु आदि त्रस-प्राणियों को जल के भीतर प्रविष्ट कर और पैरों के नीचे दबाकर जल के द्वारा उन्हें मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है ।

सूत्र - ६६

जो व्यक्ति किसी मनुष्य आदि के शिर को गीले चर्म से वेष्टित करता है, तथा निरन्तर तीव्र अशुभ पापमय कार्यों को करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म बाँधता है ।

सूत्र - ६७

जो कोई किसी प्राणी के सुख को हाथ से बन्द कर उसका गला दबाकर धुरधुराते हुए उसे मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ६८

जो कोई अग्नि को जलाकर, या अग्नि का महान आरम्भ कर किसी मनुष्य-पशु आदि को उसमें जलाता है या अत्यन्त धूमयुक्त अग्निस्थान में प्रविष्ट कर धूएं से उसका दम घोंटता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ६९

जो किसी प्राणी के उत्तमाङ्ग-शिर पर मुद्गर आदि से प्रहार करता है अथवा अति संक्लेश युक्त चित्त से उसके माथे को फरसा आदि से काटकर मार डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७०

जो कपट करके किसी मनुष्य का घात करता है और आनन्द से हँसता है, किसी मंत्रित फल को खिलाकर अथवा डंडे से मारता है, वह महामोहनीय कर्म बाँधता है ।

सूत्र - ७१

जो गूढ (गुप्त) पापाचरण करने वाला मायाचार से अपनी माया को छिपाता है, असत्य बोलता है और सूत्रार्थ का अपलाप करता है, वह महामोहनीय कर्म बाँधता है ।

सूत्र - ७२

जो अपने किये ऋषिघात आदि घोर दुष्कर्म को दूसरे पर लादता है, अथवा अन्य व्यक्ति के द्वारा किये गए दुष्कर्म को किसी दूसरे पर आरोपित करता है कि तुमने यह दुष्कर्म किया है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है

सूत्र - ७३

'यह बात असत्य है' ऐसा जानता हुआ भी जो सभा में सत्यामृषा (जिसमें सत्यांश कम है और असत्यांश अधिक है ऐसी) भाषा बोलता है और लोगों से सदा कलह करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७४

राजा को जो मंत्री–अमात्य अपने ही राजा की दारों (स्त्रियों) को, अथवा धन आने के द्वारों को विध्वंस करके और अनेक सामन्त आदि को विक्षुब्ध करके राजा को अनाधिकारी करके राज्य पर, रानियों पर या राज्य के धन-आगमन के द्वारों पर स्वयं अधिकार जमा लेता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७५

जिसका सर्वस्व हरण कर लिया है, वह व्यक्ति भेंट आदि लेकर और दिन वचन बोलकर अनुकूल बनाने के लिए यदि किसी के समीप आता है, ऐसे पुरुष के लिए जो प्रतिकूल वचन बोलकर उसके भोग-उपभोग के साधनों

को विनष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७६

जो पुरुष स्वयं अकुमार होते हुए भी 'मैं कुमार हूँ' ऐसा कहता है और स्त्रियों में गृद्ध और उनके अधीन रहता है, वह महामोहनीय कर्म क बन्ध करता है ।

सूत्र - ७७

जो कोई पुरुष स्वयं अब्रह्मचारी होते हुए भी 'मैं ब्रह्मचारी हूँ' ऐसा बोलता है, वह बैलों के मध्य में गधे के समान विस्वर (बेसुरा) नाद (शब्द) करता–रेंकता हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७८

तथा उक्त प्रकार से जो अज्ञानी पुरुष अपना ही अहित करने वाले मायाचारयुक्त बहुत अधिक असत्य वचन बोलता है और स्त्रियों के विषयों में आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ७९

जो राजा आदि की ख्याति से अर्थात् 'यह उस राजा का या मंत्री आदि का सगासम्बन्धी है' ऐसी प्रसिद्धि से अपना निर्वाह करता हो अथवा आजीविका के लिए जिस राजा के आश्रय में अपने को समर्पित करता है, अर्थात् उसकी सेवा करता है और फिर उसी के धन में लुब्ध होता है, वह पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

सूत्र - ८०

किसी ऐश्वर्यशाली पुरुष के द्वारा, अथवा जन-समूह के द्वारा कोई अनीश्वर (ऐश्वर्यरहित निर्धन) पुरुष ऐश्वर्यशाली बना दिया गया, तब उस सम्पत्ति-विहीन पुरुष के अतुल (अपार) लक्ष्मी हो गई–

सूत्र - ८१

यदि वह ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित होकर, कलुषता-युक्त चित्त से उस उपकारी पुरुष के या जन-समूह के भोग-उपभोगादि में अन्तराय या व्यवच्छेद डालने का विचार करता है, तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८२

जैसे सर्पिणी (नागिन) अपने ही अंडों को खा जाती है, उसी प्रकार जो पुरुष अपना ही भला करने वाले स्वामी का, सेनापति का अथवा धर्मपाठक का विनाश करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८३

जो राष्ट्र के नायक का या निगम (विशाल नगर) के नेता का अथवा, महायशस्वी सेठ का घात करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८४

जो बहुत जनों के नेता का, दीपक के समान उनके मार्गदर्शक का और इसी प्रकार के अनेक जनों के उपकारी पुरुष का घात करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८५

जो दीक्षा लेने के लिए उपस्थित या उद्यत पुरुष को, भोगों से विरक्त जनों को, संयमी मनुष्य को या परम तपस्वी व्यक्ति को अनेक प्रकारों से भड़का कर धर्म से भ्रष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८६

जो अज्ञानी पुरुष अनन्तज्ञानी अनन्तदर्शी जिनेन्द्रों का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८७

जो दुष्ट पुरुष न्याय-युक्त मोक्षमार्ग का अपकार करता है और बहुत जनों को उससे च्युत करता है, तथा मोक्षमार्ग की निन्दा करता हुआ अपने आपको उसमें भावित करता है, अर्थात उन दुष्ट विचारों से लिप्त करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८८

जो अज्ञानी पुरुष, जिन-जिन आचार्यों और उपाध्यायों से श्रुत और विनय धर्म को प्राप्त करता है, उन्हीं की यदि निन्दा करता है, अर्थात् ये कुछ नहीं जानते, ये स्वयं चारित्र से भ्रष्ट हैं, इत्यादि रूप से उनकी बदनामी करता है, तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ८९

जो आचार्य, उपाध्याय एवं अपने उपकारक जनों को सम्यक् प्रकार से संतृप्त नहीं करता है अर्थात् सम्यक् प्रकार से उनकी सेवा नहीं करता है, पूजा और सन्मान नहीं करता है, प्रत्युत अभिमान करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९०

अबहुश्रुत (अल्पश्रुत का धारक) जो पुरुष अपने को बड़ा शास्त्रज्ञानी कहता है, स्वाध्यायवादी और शास्त्र-पाठक बतलाता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९१

जो अतपस्वी होकर भी अपने को महातपस्वी कहता है, वह सब से महाचोर (भाव-चोर होने के कारण) महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९२

उपकार (सेवा-शुश्रूषा) के लिए किसी रोगी, आचार्य या साधु के आने पर स्वयं समर्थ होते हुए भी जो 'यह मेरा कुछ भी कार्य नहीं करता है', इस अभिप्राय से उसकी सेवा आदि कर अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता है–

सूत्र - ९३

इस मायाचार में पटु, वह शठ कलुषितचित्त होकर (भवान्तर में) अपनी अबोधि का कारण बनता हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९४

जो पुनः पुनः स्त्री-कथा, भोजन-कथा आदि विकथाएं करके मंत्र-यंत्रादि का प्रयोग करता है या कलह करता है, और संसार से पार ऊतारने वाले सम्यग्दर्शनादि सभी तीर्थों के भेदन करने के लिए प्रवृत्ति करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९५

जो अपनी प्रशंसा के लिए मित्रों के निमित्त अधार्मिक योगों का अर्थात् वशीकरणादि प्रयोगों का बार-बार उपयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९६

जो मनुष्य-सम्बन्धी अथवा पारलौकिक देवभव सम्बन्धी भोगों में तृप्त नहीं होता हुआ बार-बार उनकी अभिलाषा करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९७

जो अज्ञानी देवों की ऋद्धि (विमानादि सम्पत्ति), द्युति (शरीर और आभूषणों की कान्ति), यश और वर्ण (शोभा) का, तथा उनके बल-वीर्य का अवर्णवाद करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९८

जो देवों, यक्षों और गृह्यकों (व्यन्तरों) को नहीं देखता हुआ भी 'मैं उनकों देखता हूँ' ऐसा कहता है, वह जिनदेव के समान अपनी पूजा का अभिलाषी अज्ञानी पुरुष महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है ।

सूत्र - ९९

स्थविर मण्डितपुत्र तीस वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध हुए, यावत् सर्व दुःखों से रहित हुए।

एक-एक अहोरात्र (दिन-रात) मुहूर्त्त-गणना की अपेक्षा तीस मुहूर्त्त का कहा गया है । इन तीस मुहूर्त्तों के

तीस नाम हैं । जैसे–रौद्र, शक्त, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, प्रलम्ब, ब्रह्म, सत्य, आनन्द, विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम, ईशान, तष्ट, भावितात्मा, वैश्रवण, वरुण, शतऋषभ, गन्धर्व, अग्नि वैशायन, आतप, आवर्त, तष्टवान, भूमह (महान), ऋषभ, सर्वार्थसिद्ध और राक्षस ।

अठारहवें अर अर्हन् तीस धनुष ऊंचे थे ।

सहस्रार देवेन्द्र देवराज के तीस हजार सामानिक देव कहे गए हैं ।

पार्श्व अर्हन् तीस वर्ष तक गृह-वास में रहकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नारकावास हैं । इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति तीस पल्योपम है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति तीस सागरोपम है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तीस पल्योपम है ।

उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम कही गई है । जो देव उपरिम मध्यम ग्रैवेयक विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम है । वे देव पन्द्रह मासों के बाद आन-प्राण और उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के तीस हजार वर्ष के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-३० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३१

सूत्र - १००

सिद्धों के आदि गुण अर्थात् सिद्धत्व पर्याय प्राप्त करने के प्रथम समय में होने वाले गुण इकतीस कहे गए हैं । जैसे–क्षीण आभिनिबोधिकज्ञानावरण, क्षीणश्रुतज्ञानावरण, क्षीणअवधिज्ञानावरण, क्षीणमनःपर्यवज्ञानावरण, क्षीणकेवलज्ञानावरण, क्षीणचक्षुदर्शनावरण, क्षीणअचक्षुदर्शनावरण, क्षीण अवधिदर्शनावरण, क्षीण केवलदर्शनावरण, क्षीण निद्रा, क्षीण निद्रानिद्रा, क्षीण प्रचला, क्षीण प्रचलाप्रचला, क्षीणस्त्यानर्द्धि, क्षीण सातावेदनीय, क्षीण असातावेदनीय, क्षीण दर्शनमोहनीय, क्षीण चारित्रमोहनीय, क्षीण नरकायु, क्षीण तिर्यगायु, क्षीण मनुष्यायु, क्षीण देवायु, क्षीण उच्चगोत्र, क्षीण नीचगोत्र, क्षीण शुभनाम, क्षीण अशुभनाम, क्षीण दानान्तराय, क्षीण लाभान्तराय, क्षीण भोगान्तराय, क्षीण उपभोगान्तराय और क्षीण वीर्यान्तराय ।

सूत्र - १०१

मन्दर पर्वत धरणीतल पर परिक्षेप (परिधि) की अपेक्षा कुछ कम इकत्तीस हजार छह सौ तेईस योजन कहा गया है । जब सूर्य सब से बाहरी मण्डल में जाकर संचार करता है, तब इस भरत-क्षेत्र-गत मनुष्य को इकत्तीस हजार आठ सौ इकत्तीस और एक योजन के साठ भागों में से तीस भाग की दूरी से वह सूर्य दृष्टिगोचर होता है । अभिवर्धित मास में रात्रि-दिवस की गणना से कुछ अधिक इकत्तीस रात-दिन कहे गए हैं । सूर्यमास रात्रि-दिवस की गणना से कुछ विशेष हीन इकत्तीस रात-दिन का कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति इकत्तीस सागरोपम है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम की है।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम है । विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की जघन्य स्थिति इकत्तीस सागरोपम है । जो देव उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की उत्कृष्ट स्थिति इकत्तीस सागरोपम है । वे देव साढ़े पन्द्रह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के इकत्तीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो इकत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

समवाय-३१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३२

सूत्र - १०२

बत्तीस योग-संग्रह (मोक्ष-साधक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापार) हैं । इनके द्वारा मोक्ष की साधना सुचारु रूप से सम्पन्न होती है । वे योग इस प्रकार हैं–

सूत्र - १०३

आलोचना–व्रत-शुद्धि के लिए शिष्य अपने दोषों की गुरु के आगे आलोचना करे ।
निरपलाप–शिष्य-कथित दोषों को आचार्य किसी के आगे न कहे ।
आपत्सु दृढ़धर्मता–आपत्तियों के आने पर साधक अपने धर्म से दृढ़ रहे ।
अनिश्रितोपधान–दूसरे के आश्रय की अपेक्षा न करके तपश्चरण करे ।
शिक्षा–सूत्र और अर्थ का पठन-पाठन एवं अभ्यास करे ।
निष्प्रतिकर्मता–शरीर की सजावट-शृंगारादि न करे ।

सूत्र - १०४

अज्ञानता–यश, ख्याति, पूजादि के लिए अपने तप को प्रकट न करे, अज्ञात रखे ।
अलोभता–भक्त-पान एवं वस्त्र, पान आदि में निर्लोभ वृत्ति रखे ।
तितिक्षा–भूख, प्यास आदि परीषहों को सहन करे ।
अर्जव–अपने व्यवहार को निश्छल और सरस रखे ।
शुचि–सत्य बोलने और संयम पालने में शुद्धि रखे ।
सम्यग्दृष्टि–सम्यग्दर्शन को शंका-कांक्षादि दोषों को दूर करते हुए शुद्ध रखे ।
समाधि–चित्त को संकल्प-विकल्पों से रहित शांत रखे ।
आचारोपगत–अपने आचरण को मायाचार रहित रखे ।
विनयोपगत–विनय-युक्त रहे, अभिमान न करे ।

सूत्र - १०५

धृतिमति–अपनी बुद्धि में धैर्य रखे, दीनता न करे ।
संवेग–संसार से भयभीत रहे और निरन्तर मोक्ष की अभिलाषा रखे ।
प्रणिधि–हृदय में माया शल्य न रखे ।
सुविधि–अपने चारित्र का विधि-पूर्वक सत्-अनुष्ठान अर्थात् सम्यक् परिपालन करे ।
संवर–कर्मों के आने के द्वारों (कारणों) का संवरण अर्थात् निरोध करे ।
आत्मदोषोपसंहार–अपने दोषों का निरोध करे–दोष न लगने दे ।
सर्वकामविरक्तता–सर्व विषयों से विरक्त रहे ।

सूत्र - १०६

मूलगुण-प्रत्याख्यान–अहिंसादि मूल गुण विषयक प्रत्याख्यान करे ।
उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान–इन्द्रिय-निरोध आदि उत्तर-गुण-विषयक प्रत्याख्यान करे ।
व्युत्सर्ग–वस्त्र-पात्र आद बाहरी उपधि और मूर्च्छा आदि आभ्यन्तर उपधि को त्यागे ।
अप्रमाद–अपने दैवसिक और रात्रिक आवश्यकों के पालन आदि में प्रमाद न करे ।
लवालव–प्रतिक्षण अपनी सामाचारी के परिपालन में सावधान रहे ।
ध्यान-संवरयोग–धर्म और शुक्लध्यान की प्राप्ति के लिए आस्रव-द्वारों का संवर करे ।
मारणान्तिक कर्मोदय के होने पर भी क्षोभ न करे, मनमें शान्ति रखे ।

सूत्र - १०७

संग-परिज्ञा–संग (परिग्रह) की परिज्ञा करे अर्थात् उसके स्वरूप को जानकर त्याग करे ।
प्रायश्चित्तकरण–अपने दोषों की शुद्धि के लिए नित्य प्रायश्चित्त करे ।

मारणान्तिक-आराधना–मरने के समय संलेखना-पूर्वक ज्ञान-दर्शन, चारित्र और तप की विशिष्ट आराधना करे । यह बत्रीस योग संग्रह हैं ।

सूत्र - १०८

बत्तीस देवेन्द्र कहे गए हैं । जैसे–१. चमर, २. बली, ३. धरण, ४. भूतानन्द, यावत् (५. वेणुदेव, ६. वेणुदाली ७. हरिकान्त, ८. हरिस्सह, ९. अग्निशिख, १०. अग्निमाणव, ११. पूर्ण, १२. वशिष्ठ, १३. जलकान्त, १४. जलप्रभ, १५. अमितगति, १६. अमितवाहन, १७. वैलम्ब, १८. प्रभंजन) १९. घोष, २०. महाघोष, २१. चन्द्र, २२. सूर्य,
२३. शक्र, २४. ईशान, २५. सनत्कुमार, यावत् (२६. माहेन्द्र, २७. ब्रह्म, २८. लान्तक, २९. शुक्र, ३०. सहस्रार) ३१. प्रणत, ३२. अच्युत ।

कुन्थु अर्हत् के बत्तीस अधिक बत्तीस सौ (३२३२) केवलि जिन थे ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथ्वी में कितनेक नारकियों की स्थिति बत्तीस सागरोपम कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम है ।

जो देव विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं, उनमें से कितनेक देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम है । वे देव सोलह मासों के बाद आन-प्राण या उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के बत्तीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव ऐसे हैं जो बत्तीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व कर्मों का अन्त करेंगे ।

समवाय-३२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३३

सूत्र - १०९

शैक्ष याने कि शिष्य के लिए सम्यग्दर्शनादि धर्म की विराधनारूप आशातनाएं तैंतीस कही गई हैं । जैसे– शैक्ष (नवदीक्षित) साधु रात्निक (अधिक दीक्षा पर्याय वाले) साधु के–(१) अति निकट होकर गमन करे । (२) शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे गमन करे । (३) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से चले । (४) शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे खड़ा हो । (५) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से खड़ा हो । (६) शैक्ष साधु रात्निक साधु के अति निकट खड़ा हो । (७) शैक्ष साधु रात्निक साधु के आगे बैठे । (८) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बराबरी से बैठे । (९) शैक्ष साधु रात्निक साधु के अति समीप बैठे । (१०) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचारभूमि को नीकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आचमन करे ।

(११) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ बाहर विचार-भूमि को या विहारभूमि को नीकलता हुआ यदि शैक्ष रात्निक साधु से पहले आलोचना करे और रात्निक पीछे करे । (१२) कोई साधु रात्निक साधु के साथ पहले से बात कर रहा हो, तब शैक्ष साधु रात्निक साधु से पहले ही बोले और रात्निक साधु पीछे बोल पावें । (१३) रात्निक साधु रात्रि में या विकाल में शैक्ष से पूछे कि आर्य ! कौन सो रहे हैं और कौन जाग रहे हैं ? यह सूनकर भी यदि शैक्ष अनसूनी करके कोई उत्तर न दे । (१४) शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष के सामने आलोचना करे पीछे रात्निक साधु के सामने । (१५) शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम को लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को दिखलावे, पीछे रात्निक साधु को दिखावे । (१६) शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम या स्वादिम–आहार लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को भोजन के लिए निमंत्रण दे और पीछे रात्निक साधु को निमंत्रण दे ।

(१७) शैक्ष साधु रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु से बिना पूछे जिस किसी को दे । (१८) शैक्ष साधु अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार लाकर रात्निक साधु के साथ भोजन करता हुआ यदि उत्तम भोज्य पदार्थों को जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कवलों से खाता है । (१९) रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष उसे अनसूनी करता है । (२०) रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर ही बैठे हुए सूनता है । (२१) रात्निक साधु के द्वारा कुछ कहे जाने पर 'क्या कहा ?' इस प्रकार से यदि शैक्ष कहे । (२२) शैक्ष रात्निक साधु को 'तुम' कहकर बोले । (२३) शैक्ष रात्निक साधु से यदि चप-चप करता हुआ उद्दंडता से बोले ।

(२४) शैक्ष, रात्निक साधु के कथा करते हुए 'जी हाँ,' आदि शब्दों से अनुमोदना न करे । (२५) शैक्ष, रात्निक साधु के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'तुम्हें स्मरण नहीं' इस प्रकार से बोले तो । (२६) शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय 'बस करो' इत्यादि कहे । (२७) शैक्ष, रात्निक के द्वारा धर्मकथा कहते समय यदि परीषद् को भेदन करे । (२८) शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए उस सभा के नहीं उठने पर दूसरी या तीसरी बार भी उसी कथा को कहे । (२९) शैक्ष, रात्निक साधु के धर्मकथा कहते हुए यदि कथा की काट करे । (२९) शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या-संस्तारक को पैर से ठुकरावे । (३०) शैक्ष यदि रात्निक साधु के शय्या या आसन पर खड़ा होता, बैठता, सोता है । (३१) शैक्ष यदि रात्निक साधु से ऊंचे आसन पर बैठे । (३२) शैक्ष यदि रात्निक साधु के समान आसन पर बैठे । (३३) रात्निक के कुछ कहने पर शैक्ष अपने आसन पर बैठा-बैठा ही उत्तर दे ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की राजधानी चमरचंचा नगरी में प्रत्येक द्वार के बाहर तैंतीस-तैंतीस भौम (नगर के आकार वाले विशिष्ट स्थान) कहे गए हैं । महाविदेह वर्ष (क्षेत्र) कुछ अधिक तैंतीस हजार योजन विस्तार वाला है । जब सूर्य सर्वबाह्य मंडल से भीतर की ओर तीसरे मंडल पर आकर संचार करता है, तब वह इस भरत क्षेत्रगत मनुष्य के कुछ विशेष कम तैंतीस हजार योजन की दूरी से दृष्टिगोचर होता है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितनेक नारकों की स्थिति तैंतीस पल्योपम कही गई है । अधस्तन सातवी पृथ्वी के काल, महाकाल, रौरुक और महारौरुक नारकावासों के नारकों की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम कही गई है ।

उसी सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नारकों की अजघन्य-अनुत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम स्थिति कही गई है । कितनेक असुरकुमार देवों की स्थिति तैंतीस पल्योपम कही गई है ।

सौधर्म-ईशान कल्पों में कितनेक देवों की स्थिति तैंतीस पल्योपम है ।

विजय-वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानों में देवों की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है । जो देव सर्वार्थसिद्ध नामक पाँचवे अनुत्तर महाविमान में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, उन देवों की अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति पूरे तैंतीस सागरोपम कही गई है । वे देव तैंतीस अर्धमासों के बाद आन-प्राण अथवा उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं । उन देवों के तैंतीस हजार वर्षों के बाद आहार की ईच्छा उत्पन्न होती है ।

कितनेक भव्यसिद्धिक जीव तैंतीस भव ग्रहण करके सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, कर्मों से मुक्त होंगे, परम निर्वाण को प्राप्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देव तो नियम से एक भव ग्रहण करके मुक्त होते हैं और विजयादि शेष चार विमानों के देवों में से कोई एक भव ग्रहण करके मुक्त होता है और कोई दो मनुष्य भव ग्रहण करके मुक्त होता है ।

समवाय-३३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३४

सूत्र - ११०

बुद्धों के अर्थात् तीर्थंकर भगवंतों के चौंतीस अतिशय कहे गए हैं । जैसे–

१. नख और केश आदि का नहीं बढ़ना । २. रोगादि से रहित, मल रहित निर्मल देहलता होना । ३. रक्त और माँस का गाय के दूध के समान श्वेत वर्ण होना । ४. पद्मकमल के समान सुगन्धित उच्छ्वास निःश्वास होना । ५. माँस-चक्षु से अदृश्य प्रच्छन्न आहार और नीहार होना । ६. आकाश में धर्मचक्र का चलना । ७. आकाश में तीन छत्रों का घूमते हुए रहना । ८. आकाश में उत्तम श्वेत चामरों का ढोला जाना । ९. आकाश के समान निर्मल स्फटिक मय पादपीठयुक्त सिंहासन का होना ।

१०. आकाश में हजार लघु पताकाओं से युक्त इन्द्रध्वज का आगे-आगे चलना । ११. जहाँ-जहाँ भी अरहंत भगवंत ठहरते या बैठते हैं, वहाँ-वहाँ यक्ष देवों के द्वारा पत्र, पुष्प, पल्लवों से व्याप्त, छत्र, ध्वजा, घंटा और पताका से युक्त श्रेष्ठ अशोक वृक्ष का निर्मित होना । १२. मस्तक के कुछ पीछे तेजमंडल (भामंडल) का होना, जो अन्धकार में भी दशों दिशाओं को प्रकाशित करता है । १३. जहाँ भी तीर्थंकरों का विहार हो, उस भूमिभाग का बहुसम और रमणीय होना । १४. विहार-स्थल के काँटों का अधोमुख हो जाना । १५. सभी ऋतुओं का शरीर के अनुकूल सुखद स्पर्श वाली होना । १६. जहाँ तीर्थंकर बिराजते हैं, वहाँ की एक योजन भूमि का शीतल, सुखस्पर्श-युक्त सुगन्धित पवन से सर्व ओर संप्रमार्जन होना । १७. मन्द, सुगन्धित जल-बिन्दुओं से मेघ के द्वारा भूमि का धूलि-रहित होना ।

१८. जल और स्थल में खिलने वाले पाँच वर्ण के पुष्पों से घुटने प्रमाण भूमिभाग के पुष्पोपचार होना, अर्थात् आच्छादित किया जाना । १९. अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अभाव होना । २०. मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का प्रादुर्भाव होना । २१. धर्मोपदेश के समय हृदय को प्रिय लगने वाला और एक योजन तक फैलने वाला स्वर होना । २२. अर्धमागधी भाषा में भगवान का धर्मोपदेश देना । २३. वह अर्धमागधी भाषा बोली जाती हुई सभी आर्य अनार्य पुरुषों के लिए तथा द्विपद पक्षी और चतुष्पद मृग, पशु आदि जानवरों के लिए और पेट के बल रेंगने वाले सर्पादि के लिए अपनी-अपनी हीतकर, शिवकर, सुखद भाषारूप से परिणत हो जाती है । २४. पूर्वबद्ध वैर वाले भी (मनुष्य) देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़, गन्धर्व और महोरग भी अरहंतों के पादमूल में प्रशान्त चित्त होकर हर्षित मन से धर्म श्रवण करते हैं । २५. अन्य तीर्थिक प्रावचनिक पुरुष भी आकर भगवान की वन्दना करते हैं ।

२६. वे वादी लोग भी अरहंत के पादमूल में वचन-रहित (निरुत्तर) हो जाते हैं । २७. जहाँ-जहाँ से भी अरहंत भगवंत विहार करते हैं, वहाँ-वहाँ पच्चीस योजन तक ईति-भीति नहीं होती है । २८. मनुष्यों को मारने वाली मारी (प्लेग आदि भयंकर बीमारी) नहीं होती है । २९. स्वचक्र (अपने राज्य की सेना) का भय नहीं होता । ३०. परचक्र (शत्रु की सेना) का भय नहीं होता । ३१. अतिवृष्टि (भारी जलवर्षा) नहीं होती । ३२. अनावृष्टि नहीं होती । ३३. दुभिक्ष (दुष्काल) नहीं होता । ३४. भगवान के विहार से पूर्व उत्पन्न हुई व्याधियाँ भी शीघ्र ही शान्त हो जाती है और रक्त-वर्षा आदि उत्पात नहीं होते हैं ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र चौंतीस कहे गए हैं । जैसे–महाविदेह में बत्तीस, भारत क्षेत्र एक और ऐरवत क्षेत्र एक । (इसी प्रकार) जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में चौंतीस दीर्घ वैताढ्य कहे गए हैं ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्कृष्ट रूप से चौंतीस तीर्थंकर (एक साथ) उत्पन्न होते हैं ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर के चौंतीस लाख भवनावास कहे गए हैं । पहली, पाँचवी, छठी और सातवी इन चार पृथ्वीयों में चौंतीस लाख नारकावास कहे गए हैं ।

समवाय-३४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३५

सूत्र - १११

पैंतीस सत्यवचन के अतिशय कहे गए हैं ।

कुन्थु अर्हन् पैंतीस धनुष ऊंचे थे । दत्त वासुदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे । नन्दन बलदेव पैंतीस धनुष ऊंचे थे ।

सौधर्म कल्प में सुधर्मासभा के माणवक चैत्यस्तम्भ में नीचे और ऊपर साढ़े बारह-साढ़े बारह योजन छोड़ कर मध्यवर्ती पैंतीस योजनों में, वज्रमय, गोल, वर्तुलाकार पेटियों में जिनों की मनुष्यलोक में मुक्त हुए तीर्थंकरों की अस्थियाँ रखी हुई हैं ।

दूसरी और चौथी पृथ्वीयों में (दोनों को मिलाकर) पैंतीस लाख नारकावास हैं ।

समवाय-३५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३६

सूत्र - ११२

उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन हैं । जैसे–विनयश्रुत, परीषह, चातुरङ्गीय, असंस्कृत, अकाममरणीय, क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय, औरभ्रीय, कापिलीय, नमिप्रव्रज्या, द्रुमपत्रक, बहुश्रुतपूजा, हरिकेशीय, चित्तसंभूतीय, इषुकारीय, सभिक्षु, समाधिस्थान, पापश्रमणीय, संयतीय, मृगापुत्रीय, अनाथप्रव्रज्या, समुद्रपालीय, रथनेमीय, गौतमकेशीय, समिति, यज्ञीय, सामाचारी, खलुंकीय, मोक्षमार्गगति, अप्रमाद, तपोमार्ग, चरणविधि, प्रमादस्थान, कर्मप्रकृति, लेश्या, अनागारमार्ग और जीवाजीवविभक्ति ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है ।

श्रमण भगवान महावीर के संघ में छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं ।

चैत्र और आसोज मास में सूर्य एक बार छत्तीस अंगुल की पौरुषी छाया करता है ।

समवाय-३६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३७

सूत्र - ११३

कुन्थु अर्हन् के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे ।

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र की जीवाएं सैंतीस हजार छह सौ चौहतर योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से कुछ कम सोलह भाग लम्बी कही गई हैं ।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति नामक कालिकश्रुत के प्रथम वर्ग में सैंतीस उद्देशनकाल हैं ।

कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुल की पौरुषी छाया करता हुआ संचार करता है ।

समवाय-३७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३८

सूत्र - ११४

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् के संघ में अड़तीस हजार आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिकासम्पदा थी ।

हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों की जीवाओं का घनःपृष्ठ अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दश भाग से कुछ कम परिक्षेप वाला कहा गया है । जहाँ सूर्य अस्त होता है, उस पर्वत राज मेरु का दूसरा कांड अड़तीस हजार योजन ऊंचा है ।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति नामक कालिक श्रुत के द्वीतिय वर्ग में अड़तीस उद्देशन काल कहे गए हैं ।

समवाय-३८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-३९

सूत्र - ११५

नमि अर्हत् के उनतालीस सौ नियत क्षेत्र को जानने वाले अवधिज्ञान मुनि थे ।

समय क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) में उनतालीस कुलपर्वत कहे गए हैं । जैसे–तीस वर्षधर पर्वत, पाँच मन्दर (मेरु) और चार इषुकार पर्वत ।

दूसरी, चौथी, पाँचवी, छठी और सातवी इन पाँच पृथ्वीयों में उनतालीस लाख नारकावास कहे गए हैं ।

ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयुकर्म, इन चारों कर्मों की उनतालीस उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं ।

समवाय-३९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४०

सूत्र - ११६

अरिष्टनेमि अर्हन् के संघ में चालीस हजार आर्यिकाएं थीं ।

मन्दर चूलिकाएं चालीस योजन ऊंची कही गई हैं ।

शान्ति अर्हन् चालीस धनुष ऊंचे थे ।

नागकुमार, नागराज भूतानन्द के चालीस लाख भवनावास कहे गए हैं ।

क्षुद्रिका विमान-प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में चालीस उद्देशन काल कहे गए हैं ।

फाल्गुन पूर्णमासी के दिन सूर्य चालीस अंगुल की पौरुषी छाया करके संचार करता है । कार्तिकी पूर्णिमा को भी चालीस अंगुल की पौरुषी छाया करके संचार करता है ।

महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमानावास कहे गए हैं ।

समवाय-४० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४१

सूत्र - ११७

नमि अर्हत् के संघ में इकतालीस हजार आर्यिकाएं थीं ।

चार पृथ्वीयों में इकतालीस लाख नारकावास कहे गए हैं । जैसे–रत्नप्रभा में ३० लाख, पंकप्रभा में १० लाख, तमःप्रभा में ५ कम एक लाख और महातमःप्रभा में ५ ।

महालिका विमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग में इकतालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं ।

समवाय-४१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४२

सूत्र - ११८

श्रमण भगवान महावीर कुछ अधिक बयालीस वर्ष श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध, बुद्ध यावत् (कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और) सर्व दुःखों से रहित हुए ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप की जगती की बाहरी परिधि के पूर्वी चरमान्त भाग से लेकर वेलन्धर नागराज के गोस्तूभ नामक आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग तक मध्यवर्ती क्षेत्र का बिना किसी बाधा या व्यवधान के अन्तर बयालीस हजार योजन कहा गया है । इसी प्रकार चारों दिशाओं में भी उदकभास शंख और उदकसीम का अन्तर जानना चाहिए ।

कालोद समुद्र में बयालीस चन्द्र उद्योत करते थे, उद्योत करते हैं और उद्योत करेंगे । इसी प्रकार बयालीस सूर्य प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ।

सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्पों की स्थिति बयालीस हजार वर्ष कही गई है ।

नामकर्म बयालीस प्रकार का कहा गया है । जैसे–गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीराङ्गोपाङ्गनाम, शरीर बन्धननाम, शरीरसंघातननाम, संहनननाम, संस्थाननाम, वर्णनाम, गन्धनाम, रनाम, स्पर्शनाम, अगुरुलघुनाम, उप-घातनाम, पराघातनाम, आनुपूर्वीनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम सूक्ष्मनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीरनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभ नाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशस्कीर्तिनाम, अयश-स्कीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनाम ।

लवण समुद्र की भीतरी वेला को बयालीस हजार नाग धारण करते हैं ।

महालिका विमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में बयालीस उद्देशन काल कहे गए हैं ।

प्रत्येक अवसर्पिणी काल का पाँचवा छया आरा (दोनों मिलकर) बयालीस हजार वर्ष का है । प्रत्येक उत्सर्पिणी काल का पहला-दूसरा आरा बयालीस हजार वर्ष का है ।

समवाय-४२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४३

सूत्र - ११९

कर्मविपाक सूत्र (कर्मों का शुभाशुभ फल बताने वाले अध्ययन) के तैंतालीस अध्ययन कहे गए हैं ।

पहली, चौथी और पाँचवी पृथ्वी में तैंतालीस लाख नारकावास कहे गए हैं ।

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप के पूर्वी जगती के चरमान्त से गोस्तूभ आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त का बिना किसी बाधा या व्यवधान के तैंतालीस हजार योजन अन्तर है । इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना । विशेषता यह है कि दक्षिण में दकभास, पश्चिम दिशा में शंख आवास पर्वत है और उत्तर दिशा में दकसीम आवास पर्वत है ।

महालिका विमान प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में तैंतालीस उद्देशन काल कहे गए हैं ।

समवाय-४३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४४

सूत्र - १२०

चवालीस ऋषिभाषित अध्ययन कहे गए हैं, जिन्हें देवलोक से च्युत हुए ऋषियों ने कहा है ।

विमल अर्हत् के बाद चवालीस पुरुषयुग (पीढ़ी) अनुक्रम से एक के पीछे एक सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

नागेन्द्र, नागराज धरण के चवालीस लाख भवनावास कहे गए हैं ।

महालिका विमान प्रविभक्ति के चतुर्थ वर्ग में चवालीस उद्देशन काल कहे गए हैं ।

समवाय-४४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४५

सूत्र - १२१

समय क्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है । इसी प्रकार ऋतु (उडु) (सौधर्म-ईशान देवलोक में प्रथम पाथड़े में चार विमानवलिकाओं के मध्यभाग में रहा हुआ गोल विमान) और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धि स्थान) भी पैंतालीस-पैंतालीस लाख योजन विस्तृत जानना चाहिए ।

धर्म अर्हत् पैंतालीस धनुष ऊंचे थे ।

मन्दर पर्वत की चारों ही दिशाओं में लवणसमुद्र की भीतरी परिधि की अपेक्षा पैंतालीस हजार योजन अन्तर बिना किसी बाधा के कहा गया है ।

सभी द्व्यर्ध क्षेत्रीय नक्षत्रोंने ४५ मुहूर्त्त तक चन्द्रमा के साथ योग किया है, योग करते हैं और योग करेंगे

सूत्र - १२२

तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा ये छह नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त्त तक चन्द्र के साथ संयोगवाले कहे गए हैं ।

सूत्र - १२३

महालिकाविमान प्रविभक्ति सूत्र के पाँचवे वर्ग में पैंतालीस उद्देशनकाल हैं ।

समवाय-४५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४६

सूत्र - १२४

बारहवें दृष्टिवाद अंग के छियालीस मातृकापद कहे गए हैं ।

ब्राह्मी लिपि के छियालीस मातृ-अक्षर कहे गए हैं ।

वायुकुमारेन्द्र प्रभंजन के छियालीस लाख भवनावास कहे गए हैं ।

समवाय-४६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४७

सूत्र - १२५

जब सूर्य सबसे भीतरी मण्डल में आकर संचार करता है, तब इस भरत क्षेत्रगत मनुष्य को सैंतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजन और एक योजन के साठ भागों में इक्कीस भाग की दूरी से सूर्य दृष्टिगोचर होता है ।

अग्निभूति स्थविर तैंतालीस वर्ष गृहवास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

समवाय-४७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४८

सूत्र - १२६

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के अड़तालीस हजार पट्टण कहे गए हैं ।

धर्म अर्हत् के अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर थे ।

सूर्यमण्डल एक योजन के इकसठ भागों में से अड़तालीस भाग प्रमाण विस्तार वाला कहा गया है ।

समवाय-४८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-४९

सूत्र - १२७

सप्त-सप्तमिका भिक्षुप्रतिमा उनचास रात्रि-दिवसों से और एक सौ छियानवे भिक्षाओं से यथासूत्र यथामार्ग से (यथाकल्प से, यथातत्व से, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर, पालकर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर, आज्ञा से अनुपालन करे) आराधित होती है ।

देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्य उनचास रात-दिनों में पूर्ण यौवन से सम्पन्न होते हैं ।

त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति उनचास रात-दिन की कही गई है ।

समवाय-४९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५०

सूत्र - १२८

मुनिसुव्रत अर्हत् के संघ में पचास हजार आर्यिकाएं थीं । अनन्तनाथ अर्हत् पचास धनुष ऊंचे थे । पुरुषोत्तम वासुदेव पचास धनुष ऊंचे थे ।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत मूल में पचास योजन विस्तार वाले कहे गए हैं ।

लान्तक कल्प में पचास हजार विमानावास कहे गए हैं । सभी तिमिस्र गुफाएं और खण्डप्रपात गुफाएं पचास-पचास योजन लम्बी कही गई हैं । सभी कांचन पर्वत शिखरतल पर पचास-पचास योजन विस्तार वाले कहे गए हैं ।

समवाय-५० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५१

सूत्र - १२९

नवों ब्रह्मचर्यों के इक्यावन उद्देशन काल कहे गए हैं ।

असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा इक्यावन सौ खम्भों से रचित है । इसी प्रकार बलि की सभा भी जानना चाहिए ।

सुप्रभ बलदेव इक्यावन हजार वर्ष की परमायु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

दर्शनावरण और नाम कर्म इन दोनों कर्मों की इक्यावन उत्तर कर्मप्रकृतियाँ हैं ।

समवाय-५१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५२

सूत्र - १३०

मोहनीय कर्म के बावन नाम कहे गए हैं । जैसे–क्रोध, कोप, रोष, द्वेष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चंडिक्य, भंडन, विवाद, मान, मद, दर्प, स्तम्भ, आत्मोत्कर्ष, गर्व, परपरिवाद, अपकर्ष, परिभव, उन्नत, उन्नाम, माया, उपधि, निकृति, वलय, गहन, न्यवम, कल्क, कुरुक, दंभ, कूट, जिम्ह, किल्बिष, अनाचरणता, गूहनता, वंचनता, पलिकुंच-नता, सातियोग, लोभ, ईच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, नन्दी, राग ।

गोस्तूभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से वडवामुख महापाताल का पश्चिमी चरमान्त बाधा के बिना बावन हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार लवण समुद्र के भीतर अवस्थित दकभास केतुक का, शंख नामक जूपक का और दकसीम नामक ईश्वर का, इन चारों महापाताल कलशों का भी अन्तर जानना चाहिए

ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय इन तीनों कर्मप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियाँ बावन हैं ।

सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन तीन कल्पों में बावन लाख विमानावास हैं ।

समवाय-५२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५३

सूत्र - १३१

देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवाएं तिरेपन-तिरेपन हजार योजन से कुछ अधिक लम्बी कही गई हैं । महा-हिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वतों की जीवाएं तिरेपन-तिरेपन हजार नौ सौ इकतीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग प्रमाण लम्बी कही गई हैं ।

श्रमण भगवान महावीर के तिरेपन अनगार एक वर्ष श्रमणपर्याय पालकर महान् विस्तीर्ण एवं अत्यन्त सुखमय पाँच अनुत्तर महाविमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए ।

सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तिरेपन हजार वर्ष कही गई है ।

समवाय-५३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५४

सूत्र - १३२

भरत और ऐरवत क्षेत्रों में एक एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में चौपन चौपन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । जैसे–चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव ।

अरिष्टनेमि अर्हन् चौपन रात-दिन छद्मस्थ श्रमणपर्याय पालकर केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी जिन हुए ।

श्रमण भगवान महावीर ने एक दिन में एक आसन से बैठे हुए चौपन प्रश्नों के उत्तररूप व्याख्यान दिए थे ।

अनन्त अर्हन् के चौपन गण और चौपन गणधर थे ।

समवाय-५४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५५

सूत्र - १३३

मल्ली अर्हन् पचपन हजार वर्ष की परमायु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से पूर्वी विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पचपन हजार योजन का कहा गया है । इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित द्वारों का अन्तर जानना चाहिए ।

श्रमण भगवान महावीर अन्तिम रात्रि में पुण्य-काल विपाक वाले पचपन और पाप-फल विपाक वाले पचपन अध्ययनों का प्रतिपादन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

पहली और दूसरी इन दो पृथ्वीयों में पचपन लाख नारकावास कहे गए हैं ।

दर्शनावरणीय नाम और आयु इन तीन कर्मप्रकृतियों की मिलाकर पचपन उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं ।

समवाय-५५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५६

सूत्र - १३४

जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमाओं के परिवार वाले छप्पन नक्षत्र चन्द्र के साथ योग करते थे, करते हैं और करेंगे ।

विमल अर्हत् के छप्पन गण और छप्पन गणधर थे ।

समवाय-५६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५७

सूत्र - १३५

आचारचूलिका को छोड़कर तीन गणिपिटकों के सत्तावन अध्ययन हैं । जैसे आचाराङ्ग के अन्तिम निशीथ अध्ययन को छोड़कर प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ, द्वीतिय श्रुतस्कन्ध के आचारचूलिका को छोड़कर पन्द्रह, दूसरे सूत्र-कृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह, द्वीतिय श्रुतस्कन्ध के सात और स्थानाङ्ग के दश, इस प्रकार सर्व सतावन अध्ययन हैं ।

गोस्तुभ आवास पर्वत के पूर्वी चरमान्त से वड़वामुख महापाताल के बहुमध्य देशभाग का बिना किसी बाधा के सत्तावन हजार योजन अन्तर कहा गया है । इसी प्रकार दकभास और केतुक का, संख और यूपक का और दकसीम तथा ईश्वर नामक महापाताल का अन्तर जानना चाहिए ।

मल्लि अर्हत् के संघ में सतावन सौ मनःपर्यवज्ञानी मुनि थे ।

महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत की जीवाओं का घनःपृष्ठ सतावन हजार दो सौ तेरानवे योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दश भाग प्रमाण परिक्षेप (परिधि) रूप से कहा गया है ।

समवाय-५७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५८

सूत्र - १३६

पहली, दूसरी और पाँचवी इन तीन पृथ्वीयों में अट्ठावन लाख नारकावास कहे गए हैं ।

ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयु, नाम, अन्तराय इन पाँच कर्मप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियाँ अट्ठावन कही गई हैं

गोस्तुभ आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से वड़वामुख महापाताल के बहुमध्य देश-भाग का अन्तर अट्ठावन हजार योजन बिना किसी बाधा के कहा गया है । इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना चाहिए ।

समवाय-५८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-५९

सूत्र - १३७

चंद्रसंवत्सर (चन्द्रमा की गति की अपेक्षा से माने जाने वाले संवत्सर) की एक एक ऋतु रात-दिन की गणना से उनसठ रात्रि-दिन की कही गई है ।

संभव अर्हन् उनसठ हजार पूर्व वर्ष अगार के मध्य (गृहस्थावस्था में) रहकर मुण्डित हो अगार त्यागकर अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

मल्लि अर्हन् के संघ में उनसठ सौ (५९००) अवधिज्ञानी थे ।

समवाय-५९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६०

सूत्र - १३८

सूर्य एक एक मण्डल को साठ-साठ मुहूर्त्तों से पूर्ण करता है ।

लवणसमुद्र के अग्रोदक (१६,००० ऊंची वेला के ऊपर वाले जल) को साठ हजार नागराज धारण करते हैं

विमल अर्हन् साठ धनुष ऊंचे थे ।

बलि वैरोचनेन्द्र के साठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं । ब्रह्म देवेन्द्र देवराज के साठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं ।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में साठ लाख विमानावास कहे गए हैं ।

समवाय-६० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६१

सूत्र - १३९

पंचसंवत्सर वाले युग के ऋतु-मासों से गिनने पर इकसठ ऋतु मास होते हैं ।

मन्दर पर्वत का प्रथम काण्ड इकसठ हजार योजन ऊंचा कहा गया है ।

चन्द्रमंडल विमान एक योजन के इकसठ भागों से विभाजित करने पर पूरे छप्पन भाग प्रमाण सम-अंश कहा गया है । इसी प्रकार सूर्य भी एक योजन के इकसठ भागों से विभाजित करने पर पूरे अड़तालीस भाग प्रमाण सम-अंश कहा गया है ।

समवाय-६१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६२

सूत्र - १४०

पंचसांवत्सरिक युग में बासठ पूर्णिमाएं और बासठ अमावस्याएं कही गई हैं ।

वासुपूज्य अर्हन् के बासठ गण और बासठ गणधर कहे गए हैं ।

शुक्लपक्ष में चन्द्रमा दिवस-दिवस (प्रतिदिन) बासठवे भाग प्रमाण एक-एक कला से बढ़ता और कृष्ण पक्ष में प्रतिदिन इतना ही घटता है ।

सौधर्म और ईशान इन दो कल्पों में पहले प्रस्तट में पहली आवलिका (श्रेणी) में एक एक दिशा में बासठ-बासठ विमानावास कहे गए हैं । सभी वैमानिक विमान-प्रस्तट प्रस्तटों की गणना से बासठ कहे गए हैं ।

समवाय-६२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६३

सूत्र - १४१

कौशलिक ऋषभ अर्हन् तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष तक महाराज के मध्य में रहकर अर्थात् राजा पद पर आसीन रहकर फिर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

हरिवर्ष और रम्यक वर्ष में मनुष्य तिरेसठ रात-दिनों में पूर्ण यौवन को प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् उन्हें माता-पिता द्वारा पालन की अपेक्षा नहीं रहती ।

निषधपर्वत पर तिरेसठ सूर्योदय कहे हैं । इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत पर भी तिरेसठ सूर्योदय कहे गए हैं

समवाय-६३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६४

सूत्र - १४२

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चौसठ रात-दिनों में, दो सौ अठासी भिक्षाओं से सूत्रानुसार, यथातथ्य, सम्यक् प्रकार काय से स्पर्श कर, पालकर, शोधन कर, पार कर, कीर्तन कर, आज्ञा अनुसार अनुपालन कर आराधित होती है

असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख आवास (भवन) कहे गए हैं । चमरराज के चौंसठ हजार सामानिक देव कहे गए हैं ।

सभी दधिमुख पर्वत पल्य (ढोल) के आकार से अवस्थित है, नीचे ऊपर सर्वत्र समान विस्तार वाले हैं और चौंसठ हजार योजन ऊंचे हैं ।

सौधर्म, ईशान और ब्रह्मकल्प इन तीनों कल्पों में चौंसठ लाख विमानावास हैं ।

सभी चातुरन्त चक्रवर्तीओं के चौंसठ लड़ी वाला बहुमूल्य मुक्ता-मणियों का हार है ।

समवाय-६४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६५

सूत्र - १४३

जम्बूद्वीप नामक इस द्वीप में पैंसठ सूर्यमण्डल कहे गए हैं ।

स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष अगारवास में रहकर मुण्डित हो अगार त्याग कर अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

सौधर्मावतंसक विमान की एक-एक दिशा में पैंसठ-पैंसठ भवन कहे गए हैं ।

समवाय-६५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६६

सूत्र - १४४

दक्षिणार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे । इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे । उत्तरार्ध मानुष क्षेत्र को छियासठ चन्द्र प्रकाशित करते थे, प्रकाशित करते हैं और प्रकाशित करेंगे । इसी प्रकार छियासठ सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे ।

श्रेयांस अर्हत् के छयासठ गण और छयासठ गणधर थे ।

आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागरोपम कही गई है ।

समवाय-६६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६७

सूत्र - १४५

पंचसांवत्सरिक युग में नक्षत्र मास से गिरने पर सड़सठ नक्षत्रमास हैं ।

हैमवत और ऐरवत क्षेत्र की भुजाएं सड़सठ-सड़सठ सौ पचपन योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से तीन भाग प्रमाण कही गई है ।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गौतम द्वीप के पूर्वी चरमान्त भाग का सड़सठ हजार योजन बिना किसी व्यवधान के अन्तर कहा गया है ।

सभी नक्षत्रों का सीमा-विष्कम्भ (दिन-रात में चन्द्र द्वारा भोगने योग्य क्षेत्र) सड़सठ भागों से विभाजित करने पर सम अंश वाला कहा गया है ।

समवाय-६७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६८

सूत्र - १४६

धातकीखण्ड द्वीप में अड़सठ चक्रवर्तीयों के अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियाँ कही गई हैं । उत्कृष्ट पद की अपेक्षा धातकीखण्ड में अड़सठ अरहंत उत्पन्न होते रहे हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए ।

पुष्करवर द्वीपार्ध में अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियाँ कही गई हैं । वहाँ उत्कृष्ट रूप से अड़सठ अरहन्त उत्पन्न होते रहे हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे । इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी जानना चाहिए ।

विमलनाथ अर्हन् के संघ में श्रमणों की उत्कृष्ट श्रमण सम्पदा अड़सठ हजार थी ।

समवाय-६८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-६९

सूत्र - १४७

समयक्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र या अढ़ाई द्वीप) में मन्दर पर्वत को छोड़कर उनहत्तर वर्ष और वर्षधर पर्वत कहे गए हैं जैसे–पैंतीस वर्ष (क्षेत्र), तीस वर्षधर (पर्वत) और चार इषुकार पर्वत ।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गौतम द्वीप का पश्चिम चरमान्त भाग उनहत्तर हजार योजन अन्तर वाला बिना किसी व्यवधान के कहा गया है ।

मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ उनहत्तर हैं ।

समवाय-६९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७०

सूत्र - १४८

श्रमण भगवान महावीर चतुर्मास प्रमाण वर्षाकाल के बीस दिन अधिक एक मास (पचास दिन) व्यतीत हो जाने पर और सत्तर दिनों के शेष रहने पर वर्षावास करते थे ।

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् परिपूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रमण-पर्याय का पालन करके सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

वासुपूज्य अर्हत् सत्तर धनुष ऊंचे थे ।

मोहनीय कर्म की अबाधाकाल से रहित सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम-प्रमाण कर्मस्थिति और कर्म-निषेक कहे गए हैं ।

देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र के सामानिक देव सत्तर हजार कहे गए हैं ।

समवाय-७० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७१

सूत्र - १४९

(पंच सांवत्सरिक युग के) चतुर्थ चन्द्र संवत्सर की हेमन्त ऋतु के इकहत्तर रात्रि-दिन व्यतीत होने पर सूर्य सबसे बाहरी मंडल (चार क्षेत्र) से आवृत्ति करता है । अर्थात् दक्षिणायन से उत्तरायण की और गमन करना प्रारम्भ करता है ।

वीर्यप्रवाद पूर्व के इकहत्तर प्राभृत (अधिकार) कहे गए हैं ।

अजित अर्हन् इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए । इसी प्रकार चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा भी इकहत्तर लाख पूर्व वर्ष अगार-वास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

समवाय-७१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७२

सूत्र - १५०

सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गए हैं ।

लवण समुद्र की बाहरी वेला को बहत्तर हजार नाग धारण करते हैं ।

श्रमण भगवान महावीर बहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त होकर सर्व दुःखों से रहित हुए ।

आभ्यन्तर पुष्करार्ध द्वीप में बहत्तर चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और आगे प्रकाश करेंगे । इसी प्रकार बहत्तर सूर्य तपते थे, तपते हैं और आगे तपेंगे । प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के बहत्तर हजार उत्तम पुर (नगर) कहे गए हैं ।

बहत्तर कलाएं कही गई हैं । जैसे–

१. लेखकला, २. गणितकला, ३. रूपकला, ४. नाट्यकला, ५. गीतकला, ६. वाद्यकला, ७. स्वरगतकला, ८. पुष्करगतकला, ९. समतालकला, १०. द्युतकला, ११. जनवादकला, १२. सुरक्षाविज्ञान, १३. अष्टापदकला, १४. दकमृत्तिकाकला, १५. अन्नविधिकला, १६. पानविधिकला, १७. वस्त्रविधिकला, १८. शयनविधि, १९. आर्या-विधि, २०. प्रहेलिका, २१. मागधिका, २२. गाथाकला, २३. श्लोककला, २४. गन्धयुति ।

२५. मधुसिक्थ, २६. आभरणविधि, २७. तरुणीप्रतिकर्म, २८. स्त्रीलक्षण, २९. पुरुषलक्षण, ३०. अश्व-लक्षण, ३१. गजलक्षण, ३२. बलोकेलक्षण, ३३. कुक्कुटलक्षण, ३४. मेढ़लक्षण, ३५. चक्रलक्षण, ३६. छत्रलक्षण, ३७. दंडलक्षण, ३८. असिलक्षण, ३९. मणिलक्षण, ४०. काकणीलक्षण, ४१. चर्मलक्षण, ४२. चन्द्रचर्या, ४३. सूर्य-चर्या, ४४. राहुचर्या, ४५. ग्रहचर्या, ४६. सौभाग्यकर, ४७. दौर्भाग्यकर, ४८. विद्यागत ।

४९. मन्त्रगत, ५०. रहस्यगत, ५१. सभास, ५२. चारकला, ५३. प्रतिचारकला, ५४. व्यूहकला, ५५. प्रति-व्यूहकला, ५६. स्कन्धावारमान, ५७. नगरमान, ५८. वास्तुमान, ५९. स्कन्धावारनिवेश, ६०. वस्तुनिवेश, ६१. नगर-निवेश, ६२. बाण चलाने की कला, ६३. तलवार की मूठ आदि बनाना, ६४. अश्वशिक्षा, ६५. हस्तिशिक्षा, ६६. धनु-र्वेद, ६७. हिरण्यपाक, ६८. बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, मुष्टियुद्ध, यष्टियुद्ध, सामान्य युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध आदि युद्धों का जानना, ६९. सूत्रखेड, नालिकाखेड, वर्त्तखेड, धर्मखेड, चर्मखेड आदि खेलों का जानना, ७०. पत्रच्छेद्य, कटकछेद्य, ७१. संजीवनी विद्या, ७२. पक्षियों की बोली जानना ।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्ष की कही गई है ।

समवाय-७२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७३

सूत्र - १५१

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाएं तेहत्तर-तेहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से साढ़े सत्तरह भाग प्रमाण लम्बी कही गई है ।

विजय बलदेव तेहत्तर लाख वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

समवाय-७३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७४

सूत्र - १५२

स्थविर अग्निभूति गणधर चौहत्तर वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछ द्रह से शीतोदा महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ योजन उत्तराभिमुखी बह कर महान् घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी, चार योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी जिह्विका से नीकलकर मुक्तावलि हार के आकार वाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुंड में गिरती है । इसी प्रकार सीता नदी भी नीलवन्त वर्षधर पर्वत के केशरी द्रह से कुछ अधिक चौहत्तर सौ योजन दक्षिणाभिमुखी बहकर महान घटमुख से प्रवेश कर वज्रमयी चार योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी जिह्विका से नीकलकर मुक्तावली हार के आकार वाले प्रवाह से भारी शब्द के साथ वज्रतल वाले कुंड में गिरती है ।

चौथी को छोड़कर शेष छह पृथ्वीयों में चौहत्तर लाख नारकावास कहे गए हैं ।

समवाय-७४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७५

सूत्र - १५३

सुविधि पुष्पदन्त अर्हन् के संघ में पचहत्तर सौ केवलि जिन थे ।

शीतल अर्हन् पचहत्तर हजार पूर्व वर्ष अगारवास में रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए

शान्ति अर्हन् पचहत्तर हजार वर्ष अगारवास में रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

समवाय-७५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७६

सूत्र - १५४

विद्युत्कुमार देवों के छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गए हैं ।

सूत्र - १५५

इसी प्रकार द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन दक्षिण-उत्तर दोनों युगल वाले छहों देवों के भी छिहत्तर लाख आवास (भवन) कहे गए हैं ।

समवाय-७६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७७

सूत्र - १५६

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा सतहत्तर लाख पूर्व कोटि वर्ष कुमार अवस्था में रहकर महाराजपद को प्राप्त हुए-राजा हुए ।

अंगवंश की परम्परा में उत्पन्न हुए सतहत्तर राजा मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

गर्दतोय और तुषित लोकान्तिक देवों का परिवार सतहत्तर हजार देवों वाला है ।

प्रत्येक मुहूर्त्त में लवों की गणना से सतहत्तर लव कहे गए हैं ।

समवाय-७७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७८

सूत्र - १५७

देवेन्द्र देवराज शक्र का वैश्रमण नामक चौथा लोकपाल सुपर्णकुमारों और द्वीपकुमारों के अठहतर लाख आवासों (भवनों) का आधिपत्य, अग्रस्वामित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महाराजत्व, सेनानायकत्व करता और उनका शासन एवं प्रतिपालन करता है ।

स्थविर अकम्पित अठहतर वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए ।

उत्तरायण से लौटता हुआ सूर्य प्रथम मंडल से उनचालीसवे मण्डल तक एक मुहूर्त्त के इकसठिए अठहत्तर भाग प्रमाण दिन को कम करके और रजनी क्षेत्र (रात्रि) को बढ़ाकर संचार करता है । इसी प्रकार दक्षिणायन से लौटता हुआ भी रात्रि और दिन के प्रमाण को घटाता और बढ़ाता हुआ संचार करता है ।

समवाय-७८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-७९

सूत्र - १५८

वड़वामुख नामक महापातालकलश के अधस्तन चरमान्त भाग से इस रत्नप्रभा पृथ्वी का नीचला चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार केतुक, यूपक और ईश्वर नामक महापातालों का अन्तर भी जानना चाहिए ।

छठी पृथ्वी के बहुमध्यदेशभाग से छठे धनोदधिवात का अधस्तल चरमान्त भाग उन्यासी हजार योजन के अन्तर-व्यवधान वाला कहा गया है ।

जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कुछ अधिक उन्यासी हजार योजन है ।

समवाय-७९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८०

सूत्र - १५९

श्रेयांस अर्हन् अस्सी धनुष ऊंचे थे । त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी धनुष ऊंचे थे । अचल बलदेव अस्सी धनुष ऊंचे थे । त्रिपृष्ठ वासुदेव अस्सी लाख वर्ष महाराज पद पर आसीन रहे ।

रत्नप्रभा पृथ्वी का तीसरा अब्बहुल कांड अस्सी हजार योजन मोटा कहा गया है ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के अस्सी हजार सामानिक देव कहे गए हैं ।

जम्बूद्वीप के भीतर एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश कर सूर्य उत्तर दिशा को प्राप्त हो प्रथम बार (प्रथम मंडल में) उदित होता है ।

समवाय-८० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८१

सूत्र - १६०

नवनवमिका नामक भिक्षुप्रतिमा इक्यासी रात-दिनों में चार सौ पाँच भिक्षादत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्त्व स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्तित और आराधित होती है ।

कुन्थु अर्हत् के संघ में इक्यासी सौ मनःपर्यय ज्ञानी थे ।

व्याख्या–प्रज्ञप्ति मे इक्यासी हजार महायुग्मशत कहे गए हैं ।

समवाय-८१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८२

सूत्र - १६१

इस जम्बूद्वीप में सूर्य एक सौ ब्यासीवे मंडल को दो बार संक्रमण कर संचार करता है । जैसे–एक बार नीकलते समय और दूसरी बार प्रवेश करते समय ।

श्रमण भगवान महावीर ब्यासी रात-दिन बीतने के पश्चात् देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में संहृत किये गए ।

महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपरी चरमान्त भाग से सौगन्धिक कांड का अधस्तन चरमान्त भाग ब्यासी सौ योजन के अन्तर वाला कहा गया है ।

इसी प्रकार रुक्मी का भी अन्तर जानना चाहिए ।

समवाय-८२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८३

सूत्र - १६२

श्रमण भगवान महावीर ब्यासी रात-दिनों के बीत जाने पर तियासीवे रात-दिन के वर्तमान होने पर देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में संहृत हुए ।

शीतल अर्हत् के संघ में तियासी गण और तियासी गणधर थे । स्थविर मंडितपुत्र तियासी वर्ष की सर्व आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए ।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास में रहकर मुंडित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा तियासी लाख पूर्व वर्ष अगारवास में रहकर सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी केवली जिन हुए ।

समवाय-८३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८४

सूत्र - १६३

चौरासी लाख नारकावास कहे गए हैं ।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् चौरासी लाख पूर्व वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्मों से मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त होकर सर्व दुःखों से रहित हुए । इसी प्रकार भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी भी चौरासी-चौरासी लाख पूर्व वर्ष की पूरी आयु पालकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए

श्रेयांस अर्हत् चौरासी लाख वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

त्रिपृष्ठ वासुदेव चौरासी लाख वर्ष की सर्व आयु भोगकर सातवी पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नामक नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुए ।

देवेन्द्र, देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव हैं ।

जम्बूद्वीप के बाहर के सभी मन्दराचल चौरासी चौरासी हजार योजन ऊंचे कहे गए हैं । नन्दीश्वर द्वीप के सभी अंजनक पर्वत चौरासी चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं ।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवाओं का परिक्षेप (परिधि) चौरासी हजार सोलह योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से चार भाग प्रमाण हैं ।

पंकबहुल भाग के ऊपरी चरमान्त भाग से उसी का अधस्तन–नीचे का चरमान्त भाग चौरासी लाख योजन के अन्तर वाला कहा गया है ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक (भगवती) सूत्र के पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद कहे गए हैं ।

नागकुमार देवों के चौरासी लाख आवास (भवन) हैं ।

चौरासी हजार प्रकीर्णक कहे गए हैं ।

चौरासी लाख जीव-योनियाँ कही गई हैं ।

पूर्व की संख्या से लेकर शीर्षप्रहेलिका नाम की अन्तिम महासंख्या तक स्वस्थान और स्थानान्तर चौरासी (लाख) के गुणाकार वाले कहे गए हैं ।

ऋषभ अर्हत् के संघ में चौरासी हजार श्रमण (साधु) थे ।

सभी वैमानिक देवों के विमानावास चौरासी लाख, सतानवे हजार और तेईस विमान होते हैं, ऐसा भगवान ने कहा है ।

समवाय-८४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८५

सूत्र - १६४

चूलिका सहित श्री आचाराङ्ग सूत्र के पचासी उद्देशन काल कहे गए हैं ।

धातकीखंड के (दोनों) मन्दराचल भूमिगत अवगाढ़ तल से लेकर सर्वाग्र भाग (अंतिम ऊंचाई) तक पचासी हजार योजन कहे गए हैं । (इसी प्रकार पुष्करवर द्वीपार्ध के दोनों मन्दराचल भी जानना चाहिए ।) रुचक नामक तेरहवे द्वीप का अन्तर्वर्ती गोलाकार मंडलिक पर्वत भूमिगत अवगाढ़ तल से लेकर सर्वाग्र भाग तक पचासी हजार योजन कहा गया है । अर्थात् इन सब पर्वतों की ऊंचाई पचासी हजार योजन की है ।

नन्दनवन के अधस्तन चरमान्त भाग से लेकर सौगन्धिक काण्ड का अधस्तन चरमान्त भाग पचासी सौ योजन अन्तर वाला कहा गया है ।

समवाय-८५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८६

सूत्र - १६५

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् के छयासी गण और छयासी गणधर थे ।

सुपार्श्व अर्हत् के ८६०० वादी मुनि थे ।

दूसरी पृथ्वी के मध्य भाग से दूसरे घनोदधिवात का अधस्तन चरमान्त भाग छयासी हजार योजन के अन्तर वाला कहा गया है ।

समवाय-८६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८७

सूत्र - १६६

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तुप आवास पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है । मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त भाग से दकभास आवास पर्वत का उत्तरी चरमान्त सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है । इसी प्रकार मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है । और इसी प्रकार मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास पर्वत का दक्षिणी चरमान्त भाग सतासी हजार योजन के अन्तर वाला है ।

आद्य ज्ञानावरण और अन्तिम (अन्तराय) कर्म को छोड़कर शेष छहों कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ सतासी कही गई हैं ।

महाहिमवन्त कूट के उपरिम अन्त भाग से सौगन्धिक कांड का अधस्तन चरमान्त भाग ८७०० योजन अन्तर वाला है । इसी प्रकार रुक्मी कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक कांड के अधोभाग का अन्तर भी सतासी सौ योजन है ।

समवाय-८७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८८

सूत्र - १६७

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के परिवार में अठासी-अठासी महाग्रह कहे गए हैं ।

दृष्टिवाद नामक बारहवे अंग के सूत्रनामक दूसरे भेद में अठासी सूत्र कहे गए हैं । जैसे ऋजुसूत्र, परिणता-परिणत सूत्र, इस प्रकार नन्दीसूत्र के अनुसार अठासी सूत्र कहना चाहिए ।

मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त भाग से गोस्तूप आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग ८८०० योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार चारों दिशाओं में आवास पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए ।

बाहरी उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा को जाता हुआ सूर्य प्रथम छह मास में चवालीसवे मण्डल में पहुँचने पर मुहूर्त्त के इकसठिये अठासी भाग दिवस क्षेत्र (दिन) को घटाकर और रजनीक्षेत्र (रात) को बढ़ाकर संचार करता है। दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा को जाता हुआ सूर्य दूसरे छह मास पूरे करके चवालीसवे मण्डल में पहुँचने पर मुहूर्त्त के इकसठिये अठासी भाग रजनी क्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढ़ाकर संचार करता है ।

समवाय-८८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-८९

सूत्र - १६८

कौशलिक ऋषभ अर्हत् इसी अवसर्पिणी के तीसरे सुषमदुषमा आरे के पश्चिम भाग में नवासी अर्धमासों (३ वर्ष, ८ मास, १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्म-मुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

श्रमण भगवान महावीर इसी अवसर्पिणी के चौथे दुःषमसुषमा काल के अन्तिम भाग में नवासी अर्धमासों (३ वर्ष, ८ मास, १५ दिन) के शेष रहने पर कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए।

चातुरन्त चक्रवर्ती हरिषेण राजा ८९०० वर्ष महासाम्राज्य पद पर आसीन रहे।

शान्तिनाथ अर्हत् के संघ में ८९०० आर्यिकाओं की उत्कृष्ट आर्यिकासम्पदा थी।

समवाय-८९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९०

सूत्र - १६९

शीतल अर्हत् नब्बे धनुष ऊंचे थे। अजित अर्हत् के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे। इसी प्रकार शान्ति जिन के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे।

स्वयम्भू वासुदेव ने नब्बे वर्ष में पृथ्वी को विजय किया था।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वतों के ऊपरी शिखर से सौगन्धिककाण्ड का नीचे का चरमान्त भाग ९००० योजन अन्तर वाला है।

समवाय-९० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९१

सूत्र - १७०

पर-वैयावृत्यकर्म प्रतिमाएं इक्यानवे कही गई हैं।

कालोद समुद्र परिक्षेप की अपेक्षा कुछ अधिक इक्यानवे लाख योजन है।

कुन्थु अर्हत् के संघ में ९१०० नियत क्षेत्र को विषय करने वाले अवधिज्ञानी थे।

आयु और गोत्रकर्म को छोड़कर शेष छह कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियाँ इक्यानवे कही गई हैं।

समवाय-९१ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९२

सूत्र - १७१

प्रतिमाएं बानवे कही गई हैं।

स्थविर इन्द्रभूति बानवे वर्ष की आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, (कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित) हुए।

मन्दर पर्वत के बहुमध्य देशभाग से गोस्तूप आवासपर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग बानवे हजार योजन के अन्तर वाला है। इसी प्रकार चारों ही आवासपर्वतों का अन्तर जानना चाहिए।

समवाय-९२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९३

सूत्र - १७२

चन्द्रप्रभ अर्हत् के तिरानवे गण और तिरानवे गणधर थे ।

शान्ति अर्हत् के संघ में ९३०० चतुर्दशपूर्वी थे ।

दक्षिणायन में उत्तरायण को जाते हुए, अथवा उत्तरायण से दक्षिणायन को लौटते हुए तिरानवे मण्डल पर परिभ्रमण करता हुआ सूर्य सम अहोरात्र को विषम करता है ।

समवाय-९३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९४

सूत्र - १७३

निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतों की जीवाएं चौरानवे हजार एक सौ छप्पन योजन तथा एक योजन के उन्नीस भागों में से दो भाग प्रमाण लम्बी कही गई हैं ।

अजित अर्हत् के संघ में ९४०० अवधिज्ञानी थे ।

समवाय-९४ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९५

सूत्र - १७४

सुपार्श्व अर्हत् के पंचानवे गण और पंचानवे गणधर थे ।

इस जम्बूद्वीप के चरमान्त भाग से चारों दिशाओं में लवण समुद्र के भीतर पंचानवे-पंचानवे हजार योजन अवगाहन करने पर चार महापाताल हैं । जैसे–१. वड़वामुख, २. केतुक, ३. यूपक और ४. ईश्वर । लवण समुद्र के उभय पार्श्व पंचानवे-पंचानवे प्रदेश पर उद्वेध (गहराई) और उत्सेध (ऊंचाई) वाले कहे गए हैं ।

कुन्थु अर्हत् पंचानवे हजार वर्ष की परमायु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए । स्थविर मौर्यपुत्र पंचानवे वर्ष की आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

समवाय-९५ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९६

सूत्र - १७५

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के छयानवे-छयानवे करोड़ ग्राम थे ।

वायुकुमार देवों के छयानवे लाख आवास (भवन) कहे गए हैं ।

व्यावहारिक दण्ड अंगुल के माप से छयानवे अंगुल-प्रमाण होता है । इसी प्रकार धनुष, नालिका, युग, अक्ष और मुशल भी जानना चाहिए ।

आभ्यन्तर मण्डल पर सूर्य के संचार करते समय आदि (प्रथम) मुहूर्त्त छयानवे अंगुल की छाया वाला कहा गया है ।

समवाय-९६ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९७

सूत्र - १७६

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से गोस्तुभ आवास-पर्वत का पश्चिमी चरमान्त भाग सतानवे हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में जानना चाहिए ।

आठों कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ सतानवे कही गई हैं ।

चातुरन्त चक्रवर्ती हरिषेण राजा कुछ कम ९७०० वर्ष अगार-वास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

समवाय-९७ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९८

सूत्र - १७७

नन्दनवन के ऊपरी चरमान्त भाग से पांडुक वन के नीचले चरमान्त भाग का अन्तर अट्ठानवे हजार योजन का है ।

मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त भाग से गोस्तुभ आवास पर्वत का पूर्वी चरमान्त भाग अट्ठानवे हजार योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार चारों ही दिशाओं में अवस्थित आवास पर्वतों का अन्तर जानना चाहिए ।

दक्षिण भरतक्षेत्र का धनःपृष्ठ कुछ कम ९८०० योजन आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा कहा गया है ।

उत्तर दिशा से सूर्य प्रथम छह मास दक्षिण की ओर आता हुआ उनचासवे मंडल के उपर आकर मुहूर्त्त के इकसठिये अट्ठानवे भाग दिवस क्षेत्र (दिन) के घटाकर और रजनी-क्षेत्र (रात) के बढ़ाकर संचार करता है । इसी प्रकार दक्षिण दिशा से सूर्य दूसरे छह मास उत्तर की ओर जाता हुआ उनचासवे मंडल के ऊपर आकर मुहूर्त्त के अट्ठानवे इकसठ भाग रजनीक्षेत्र (रात) के घटाकर और दिवस क्षेत्र (दिन) के बढ़ाकर संचार करता है ।

रेवती से लेकर ज्येष्ठा तक के उन्नीस नक्षत्रों के तारे अट्ठानवे हैं ।

समवाय-९८ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-९९

सूत्र - १७८

मन्दर पर्वत निन्यानवे हजार योजन ऊंचा कहा गया है । नन्दनवन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त ९९०० योजन अन्तर वाला कहा गया है । इसी प्रकार नन्दनवन के दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त ९९०० योजन अन्तर वाला है ।

उत्तर दिशा में सूर्य का प्रथम मंडल आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवे हजार योजन कहा गया है । दूसरा सूर्य-मंडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवे हजार योजन कहा गया है । तीसरा सूर्यमंडल भी आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा कुछ अधिक निन्यानवे हजार योजन कहा गया है ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अंजन कांड के अधस्तन चरमान्त भाग से वाणव्यन्तर भौमेयक देवों के विहारों (आवासों) का उपरिम अन्तभाग ९९०० योजन अन्तर वाला कहा गया है ।

समवाय-९९ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

समवाय-१००

सूत्र - १७९

दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एक सौ रात-दिनों में और साढ़े पाँचसौ भिक्षादत्तियों से यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्त्व से स्पृष्ट, पालित, शोभित, तीरित, कीर्तित और आराधित होती है ।

शतभिषक् नक्षत्र के एक सौ तारे होते हैं ।

सुविधि पुष्पदन्त अर्हत् सौ धनुष ऊंचे थे । पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए । इसी प्रकार स्थविर आर्य सुधर्मा भी सौ वर्ष की सर्व आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित हुए ।

सभी दीर्घ वैताढ्य पर्वत एक-एक सौ गव्यूति ऊंचे हैं । सभी क्षुल्लक हिमवन्त और शिखरी वर्षधर पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे हैं । तथा ये सभी वर्षधर पर्वत सौ-सौ गव्यूति उद्वेध वाले हैं । सभी कांचनक पर्वत एक-एक सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं तथा वे सौ-सौ गव्यूति उद्वेध वाले और मूल में एक-एक सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं।

समवाय-१०० का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

मुनि दीपरत्नसागर कृत् समवाय
१-से-१०० का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

प्रकीर्णक समवाय

सूत्र - १८०

चन्द्रप्रभ अर्हत् डेढ़ सौ धनुष ऊंचे थे । आरण कल्प में डेढ़ सौ विमानावास कहे गए हैं । अच्युत कल्प भी डेढ़ सौ विमानावास वाला कहा गया है ।

सूत्र - १८१

सुपार्श्व अर्हत् दो सौ धनुष ऊंचे थे ।

सभी महाहिमवन्त और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो-दो सौ योजन ऊंचे हैं और वे सभी दो-दो गव्यूति उद्वेध वाले हैं इस जम्बूद्वीप में दो सौ कांचनक पर्वत कहे गए हैं ।

सूत्र - १८२

पद्मप्रभ अर्हत् अढ़ाई सौ धनुष ऊंचे थे ।

असुरकुमार देवों के प्रासादावतंसक अढ़ाई सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं ।

सूत्र - १८३

सुमति अर्हत् तीन सौ धनुष ऊंचे थे । अरिष्टनेमि अर्हत् तीनसौ वर्ष कुमारवास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

वैमानिक देवों के विमान-प्राकार तीन-तीन सौ योजन ऊंचे हैं ।

श्रमण भगवान महावीर के संघ में तीन सौ चतुर्दशपूर्वी मुनि थे ।

पाँच सौ धनुष की अवगाहना वाले चरमशरीरी सिद्धि को प्राप्त पुरुषों (सिद्धों) के जीवप्रदेशों की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुष की होती है ।

सूत्र - १८४

पुरुषादानीय पार्श्व अर्हन् के साढ़े तीन सौ चतुर्दशपूर्वीयों की सम्पदा थी ।

अभिनन्दन अर्हन् साढ़े तीन सौ धनुष ऊंचे थे ।

सूत्र - १८५

संभव अर्हत् चार सौ धनुष ऊंचे थे ।

सभी निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत चार-चार सौ योजन ऊंचे तथा वे चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध (गहराई) वाले हैं । सभी वक्षार पर्वत निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वतों के समीप चार-चार सौ योजन ऊंचे और चार-चार सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गए हैं ।

आनत और प्राणत इन दो कल्पों में दोनों के मिलाकर चार सौ विमान कहे गए हैं ।

श्रमण भगवान महावीर के चार सौ अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी । वे वादी देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे ।

सूत्र - १८६

अजित अर्हन् साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे ।

चातुरन्त चक्रवर्ती सगर राजा साढ़े चार सौ धनुष ऊंचे थे ।

सूत्र - १८७

सभी वक्षार पर्वत सीता-सीतोदा महानदियों के और मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और पाँच-पाँच सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गए हैं ।

सभी वर्षधर कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन विष्कम्भ वाले कहे गए हैं ।

कौशलिक ऋषभ अर्हत् पाँच सौ धनुष ऊंचे थे ।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत पाँच सौ धनुष ऊंचे थे ।

सौमनस, गन्धमादन, विद्युत्प्रभ और मालवन्त ये चारों वक्षार पर्वत मन्दर पर्वत के समीप पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और पाँच-पाँच सौ गव्यूति उद्वेध वाले हैं ।

हरि और हरिस्सह कूट को छोड़कर शेष सभी वक्षार पर्वत-कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गए हैं । बलकूट को छोड़कर सभी नन्दनवन के कूट पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे और मूल में पाँच-पाँच सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले कहे गए हैं ।

सौधर्म और ईशान दोनों कल्पों में सभी विमान पाँच-पाँच सौ योजन ऊंचे हैं ।

सूत्र - १८८

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में विमान छह सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं । क्षुल्लक हिमवन्त कूट के उपरिम चरमान्त से क्षुल्लक हिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणीतल छह सौ योजन अन्तर वाला है । इसी प्रकार शिखरी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए ।

पार्श्व अर्हत् के छह सौ अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा थी जो देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे ।

अभिचन्द्र कुलकर छह सौ धनुष ऊंचे थे ।

वासुपूज्य अर्हत् छह सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर अनगा से अनगारिता में प्रव्रजित हुए थे ।

सूत्र - १८९

ब्रह्म और लान्तक इन दो कल्पों में विमान सात-सात सौ योजन ऊंचे हैं ।

श्रमण भगवान महावीर के संघ में सात सौ वैक्रिय लब्धिधारी साधु थे ।

अरिष्टनेमि अर्हत् कुछ कम सात सौ वर्ष केवलिपर्याय में रहकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

महाहिमवन्त कूट के ऊपरी चरमान्त भाग से महाहिमवन्त वर्षधर पर्वत का समधरणी तल सात सौ योजन अन्तर वाला कहा गया है ।

इसी प्रकार रुक्मी कूट का भी अन्तर जानना चाहिए ।

सूत्र - १९०

महाशुक्र और सहस्रार इन दो कल्पों में विमान आठ सौ योजन ऊंचे हैं ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम कांड के मध्यवर्ती आठ सौ योजनों में वानव्यवहार भौमेयक देवों के विहार कहे गए हैं ।

श्रमण भगवान महावीर के कल्याणमय गति और स्थिति वाले तथा भविष्य में मुक्ति प्राप्त करने वाले अनुत्तरीपपातिक मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से आठ सौ योजन की ऊंचाई पर सूर्य परिभ्रमण करता है

अरिष्टनेमि अर्हत् के अपराजित वादियों की उत्कृष्ट वादिसम्पदा आठ सौ थी, जो देव, मनुष्य और असुरों में से किसी से भी वाद में पराजित होने वाले नहीं थे ।

सूत्र - १९१

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पों में विमान नौ-नौ सो योजन ऊंचे हैं ।

निषध कूट के उपरिम शिखरतल से निषध वर्षधर पर्वत का सम धरणीतल नौ सौ योजन अन्तर वाला है । इसी प्रकार नीलवन्त कूट का भी अन्तर जानना चाहिए ।

विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे ।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन की सबसे ऊपरी ऊंचाई पर तारा-मंडल संचार करता है ।

निषध वर्षधर पर्वत के उपरिम शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम कांड के बहुमध्य देश भाग का अन्तर नौ सौ योजन है ।

इसी प्रकार नीलवन्त पर्वत का भी अन्तर नौ सौ योजन का समझना चाहिए ।

वर्षधर पर्वतों में निषध पर्वत तीसरा और नीलवन्त पर्वत चौथा है । दोनों का अन्तर समान है ।

सूत्र - १९२

सभी ग्रैवेयक विमान १००० योजन ऊंचे कहे गए हैं ।

सभी यमक पर्वत दश-दश सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं । तथा वे दश-दश सौ गव्यूति उद्वेध वाले कहे गए हैं। वे मूल में दश-दश सौ योजन आयाम-विष्कम्भ वाले हैं । इसी प्रकार चित्र-विचित्र कूट भी कहना चाहिए ।

सभी वृत्त वैताढ्य पर्वत दश-दश सौ योजन ऊंचे हैं । उनका उद्वेध दश-दश सौ गव्यूति है । वे मूल में दश-दश सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं । उनका आकार ऊपर-नीचे सर्वत्र पल्यक (ढोल) के समान गोल है ।

वक्षार कूट को छोड़कर सभी हरि और हरिस्सह कूट दश-दश सौ योजन ऊंचे हैं और मूल में दश सौ योजन विष्कम्भ वाले हैं । इसी प्रकार नन्दन-कूट को छोड़कर सभी बलकूट भी दश सौ योजन विस्तार वाले जानना चाहिए ।

अरिष्टनेमि अर्हत् दश सौ वर्ष (१०००) की समग्र आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

पार्श्व अर्हत् के दश सौ अन्तेवासी कालगत होकर सिद्ध, बुद्ध, कर्ममुक्त, परिनिर्वाण को प्राप्त और सर्व दुःखों से रहित हुए ।

पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह दश-दश सौ (१०००) योजन लम्बे कहे गए हैं ।

सूत्र - १९३

अनुत्तरौपपातिक देवों के विमान ग्यारह सौ योजन ऊंचे कहे गए हैं ।

पार्श्व अर्हत् के संघ में ११०० वैक्रिय लब्धि से सम्पन्न साधु थे ।

सूत्र - १९४

महापद्म और महापुण्डरीक द्रह दो-दो हजार योजन लम्बे हैं ।

सूत्र - १९५

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के वज्रकांड के ऊपरी चरमान्त भाग से लोहिताक्ष कांड का नीचला चरमान्त भाग तीन हजार योजन के अन्तर वाला है ।

सूत्र - १९६

तिंगिछ और केशरी द्रह चार-चार हजार योजन लम्बे हैं ।

सूत्र - १९७

धरणीतल पर मन्दर पर्वत के ठीक बीचोंबीच रुचकनाभि से चारों ही दिशाओं में मन्दर पर्वत पाँच-पाँच हजार योजन के अन्तर वाला है ।

सूत्र - १९८

सहस्रार कल्प में छह हजार विमानावास कहे गए हैं ।

सूत्र - १९९

रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकांड के ऊपरी चरमान्त भाग से पुलककांड का नीचला चरमान्त भाग सात हजार जन के अन्तर वाला है ।

सूत्र - २००

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष कुछ अधिक आठ हजार योजन विस्तार वाले हैं ।

सूत्र - २०१

पूर्व और पश्चिम में समुद्र को स्पर्श करने वाली दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र की जीवा नौ हजार योजन लम्बी है ।

(अजित अर्हत् के संघ में कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे ।)

सूत्र - २०२

मन्दर पर्वत धरणीतल पर दश हजार योजन विस्तार वाला कहा गया है ।

सूत्र - २०३

जम्बूद्वीप एक लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला कहा गया है ।

सूत्र - २०४

लवण समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ से दो लाख योजन चौड़ा कहा गया है ।

सूत्र - २०५

पार्श्व अर्हत् के संघ में तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट सम्पदा थी ।

सूत्र - २०६

धातकीखण्ड नामक द्वीप चक्रवालविष्कम्भ की अपेक्षा चार लाख योजन चौड़ा कहा गया है ।

सूत्र - २०७

लवणसमुद्र के पूर्वी चरमान्त भाग से पश्चिमी चरमान्त भाग का अन्तर पाँच लाख योजन है ।

सूत्र - २०८

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा साठ लाख पूर्व वर्ष राजपद पर आसीन रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए ।

सूत्र - २०९

इस जम्बूद्वीप की पूर्वी वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड के चक्रवाल विष्कम्भ का पश्चिमी चरमान्त भाग सात लाख योजन के अन्तर वाला है ।

सूत्र - २१०

माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमानावास कहे गए हैं ।

सूत्र - २११

अजित अर्हन् के संघ में कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी थे । (सूत्र २०१ में देखिए यह सूत्र वहाँ होना चाहिए) ।

सूत्र - २१२

पुरुषसिंह वासुदेव दश लाख वर्ष की कुल आयु को भोगकर पाँचवी नारकपृथ्वी में नारक रूप से उत्पन्न हुए ।

सूत्र - २१३

श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर भव ग्रहण करने से पूर्व छठे पोट्टिल के भव में एक कोटि वर्ष श्रमण-पर्याय पालकर सहस्रार कल्प में सर्वार्थविमान में देवरूप से उत्पन्न हुए थे ।

सूत्र - २१४

भगवान श्री ऋषभदेव का और अन्तिम भगवान महावीर वर्धमान का अन्तर एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम कहा गया है ।

सूत्र - २१५

गणिपिटक द्वादश अंग स्वरूप है । वे अंग इस प्रकार हैं–आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृत्दशा, अनुत्तरोपपातिक दशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद ।

यह आचारांग क्या है ? इसमें क्या वर्णन किया गया है ? आचारांग में श्रमण निर्ग्रन्थों के आचार, गौचरी, विनय, वैनयिक, स्थान, गमन, चंक्रमण, प्रमाण, योगयोजन, भाषा, समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त, पान, उद्गम, उत्पादन, एषणाविशुद्धि, शुद्धग्रहण, अशुद्धग्रहण, व्रत, नियम, तप और उपधान इनका सुप्रशस्त रूप से कथन किया गया है ।

आचार संक्षेप से पाँच प्रकार का है । ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार । इस आचार का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र भी आचार कहलाता है । आचारांग की परिमित सूत्रार्थप्रदान रूप

वाचनाएं हैं, संख्यात उपक्रम आदि अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेष्टक हैं, संख्यात श्लोक हैं और संख्यात निर्युक्तियाँ हैं ।

गणिपिटक के द्वादशाङ्ग में अंग की अपेक्षा 'आचार' प्रथम अंग है । इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं, पचासी उद्देशन-काल हैं, पचासी उद्देशन-काल हैं, पचासी समुद्देशन-काल हैं । पद-गणना की अपेक्षा इसमें अट्ठारह हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अर्थात् प्रत्येक वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, अतः उनके जानने रूप ज्ञान के द्वार भी अनन्त ही होते हैं । पर्याय भी अनन्त हैं, क्योंकि वस्तु के धर्म अनन्त हैं । त्रस जीव परित (सीमित) है । स्थावर जीव अनन्त हैं । सभी पदार्थ द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत हैं, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कृत (अनित्य) हैं, सर्व पदार्थ सूत्रों में निबद्ध (ग्रथित) हैं और निकाचित हैं अर्थात् निर्युक्ति, संग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि से प्रतिष्ठित हैं । इस आचाराङ्ग में जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रज्ञप्त भाव सामान्य रूप से कहे जाते हैं, विशेष रूप से प्ररूपण किये जाते हैं, हेतु, दृष्टान्त आदि के द्वारा दर्शाए जाते हैं, विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जाते हैं और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किये जाते हैं ।

आचाराङ्ग के अध्ययन से आत्मा वस्तु-स्वरूप का एवं आचार-धर्म का ज्ञाता होता है, गुणपर्यायों का विशिष्ट ज्ञाता होता है तथा अन्य मतों का भी विज्ञाता होता है । इस प्रकार आचार-गोचरी आदि चरणधर्मों की तथा पिण्डविशुद्धि आदि करणधर्मों की प्ररूपणा-इसमें संक्षेप से की जाती है, विस्तार से की जाती है, हेतु-दृष्टान्त से उसे दिखाया जाता है, विशेष रूप से निर्दिष्ट किया जाता और उपनय-निगमन के द्वारा उपदर्शित किया जाता है ।

सूत्र - २१६

सूत्रकृत क्या है–उसमें क्या वर्णन है ?

सूत्रकृत के द्वारा स्वसमय सूचित किये जाते हैं, पर-समय सूचित किये जाते हैं, स्वसमय और परसमय सूचित किये जाते हैं, जीव सूचित किये जाते हैं, अजीव सूचित किये जाते हैं, जीव और अजीव सूचित किये जाते हैं, लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोकअलोक सूचित किया जाता है ।

सूत्रकृत के द्वारा जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तक के सभी पदार्थ सूचित किये जाते हैं । जो श्रमण अल्पकाल में ही प्रव्रजित हैं जिनकी बुद्धि खोटे समयों या सिद्धांतों के सूनने से मोहित है, जिनके हृदय तत्त्व के विषय में सन्देह के उत्पन्न होने से आन्दोलित हो रहे हैं और सहज बुद्धि का परिणमन संशय को प्राप्त हो रहा है, उनकी पाप उपार्जन करने वाली मलिन मति के दुर्गुणों के शोधन करने के लिए क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के चौरासी, अज्ञानवादियों के सड़संठ और विनयवादियों के बत्तीस, इन सब तीन सौ तिरेसठ अन्यवादियों का व्यूह अर्थात् निराकरण करके स्व-समय (जैन सिद्धान्त) स्थापित किया जाता है । नाना प्रकार के दृष्टान्तपूर्ण युक्तियुक्त वचनों के द्वारा पर-मत के वचनों की भलीभाँति से निःसारता दिखलाते हुए, तथा सत्पद-प्ररूपणा आदि अनेक अनुयोग द्वारों के द्वारा जीवादि तत्त्वों को विविध प्रकार से विस्तारानुगम कर परम सद्भावगुण-विशिष्ट, मोक्षमार्ग के अवतारक, सम्यग्दर्शनादि में प्राणियों के प्रवर्तक, सकल-सूत्रअर्थसम्बन्धी दोषों से रहित, समस्त सद्गुणों से रहित, उदार, प्रगाढ़ अन्धकारमयी दुर्गों में दीपकस्वरूप, सिद्धि और सुगतिरूपी उत्तम गृह के लिए सोपान के समान, प्रवादियों के विक्षोभ से रहित निष्प्रकम्प सूत्र और अर्थ सूचित किये जाते हैं ।

सूत्रकृताङ्ग की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ़ संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं, और निर्युक्तियाँ संख्यात हैं ।

अंगों की अपेक्षा यह दूसरा अंग है । इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, तेईस अध्ययन हैं, तैंतीस उद्देशनकाल हैं, तैंतीस समुद्देशनकाल हैं, पद-परिमाण से छत्तीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्तगम और अनन्त पर्याय हैं । परिमित त्रस और अनन्त स्थावर जीवों का तथा नित्य, अनित्य सूत्र में साक्षात कथित एवं निर्युक्ति आदि द्वारा सिद्ध जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित पदार्थों का सामान्य-विशेष रूप में कथन किया गया है, नाम, स्थापना आदि भेद करके प्रज्ञापन किया है, नामादि के स्वरूप का कथन करके प्ररूपण किया गया है, उपमाओं द्वारा दर्शित किया गया है, हेतु दृष्टान्त आदि देकर निदर्शित किया गया है और उपनय-निगमन द्वारा उपदर्शित किए गए हैं ।

इस अंग का अध्ययन करे अध्येता ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस अंग में चरण (मूल गुणों) तथा करण (उत्तर गुणों) का कथन किया गया है, प्रज्ञापना और प्ररूपणा की गई है । उनका निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है यह सूत्रकृताङ्ग का परिचय है ।

सूत्र - २१७

स्थानाङ्ग क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

जिसमें जीवादि पदार्थ प्रतिपाद्य रूप से स्थान प्राप्त करते हैं, वह स्थानाङ्ग है । इस के द्वारा स्वसमय स्थापित-सिद्ध किये जाते हैं, पर-समय स्थापित किये जाते हैं, स्वसमय-परसमय स्थापित किये जाते हैं । जीव स्थापित किये जाते हैं, अजीव स्थापित किये जाते हैं, जीव-अजीव स्थापित किये जाते हैं । लोक स्थापित किया जाता है, अलोक स्थापित किया जाता है और लोक-अलोक दोनों स्थापित किये जाते हैं ।

स्थापनाङ्ग में जीव आदि पदार्थों के द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों का निरूपण किया गया है ।

सूत्र - २१८

तथा शैलों (पर्वतों) का गंगा आदि महानदियों का, समुद्रों, सूर्यों, भवनों, विमानों, आकरों, सामान्य नदियों, चक्रवर्ती की निधियों, एवं पुरुषों की अनेक जातियों का स्वरों के भेदों, गोत्रों और ज्योतिष्क देवों के संचार का वर्णन किया गया है ।

सूत्र - २१९

तथा एक-एक प्रकार के पदार्थों का, दो-दो प्रकार के पदार्थों का यावत् दश-दश प्रकार के पदार्थों का कथन किया गया है । जीवों का, पुद्गलों का तथा लोक में अवस्थित धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का भी प्ररूपण किया गया है ।

स्थानाङ्ग की वाचनाएं परीत (सीमित) हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ़ (छन्दो-विशेष) संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं और संग्रहणियाँ संख्यात हैं ।

यह स्थानाङ्ग अंग की अपेक्षा तीसरा अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन है, इक्कीस उद्देशन-काल है, (इक्कीस समुद्देशन काल हैं ।) पद-गणना की अपेक्षा इसमें बहत्तर हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं । अनन्त स्थावर हैं । द्रव्य-दृष्टि से सर्वभाव शाश्वत हैं, पर्याय-दृष्टि से अनित्य हैं, निबद्ध हैं, निकाचित (दृढ़ किये गए) हैं, जिन-प्रज्ञप्त हैं । इन सब भावों का इस अंग में कथन किया जाता है, प्रज्ञापन किया जाता है, प्ररूपण किया जाता है, निदर्शन किया जाता है और उपदर्शन किया जाता है । इस अंग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार चरण और करण प्ररूपणा के द्वारा वस्तु का कथन प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह तीसरे स्थानाङ्ग का परिचय है ।

सूत्र - २२०

समवायाङ्ग क्या है ? इसमें क्या वर्णन है ?

समवायाङ्ग में स्वसमय सूचित किये जाते हैं, परसमय सूचित किये जाते हैं और स्वसमय–परसमय सूचित किये जाते हैं । जीव सूचित किये जाते हैं, अजीव सूचित किये जाते हैं और जीव-अजीव सूचित किये जाते हैं । लोक सूचित किया जाता है, अलोक सूचित किया जाता है और लोक-अलोक सूचित किया जाता है ।

समवायाङ्ग के द्वारा एक, दो, तीन को आदि लेकर एक-एक स्थान की परिवृद्धि करते हुए शत, सहस्त्र और कोटाकोटी तक के कितने ही पदार्थों का और द्वादशांग गणिपिटक के पल्लवाग्रों (पर्यायों के प्रमाण) का कथन किया जाता है । सौ तक के स्थानों का, तथा बारह अंगरूप में विस्तार को प्राप्त, जगत के जीवों के हितकारक भगवान श्रुतज्ञान का संक्षेप से समवतार किया जाता है । इस समवायाङ्ग में नाना प्रकार के भेद-प्रभेद वाले जीव और अजीव पदार्थ वर्णित हैं । तथा विस्तार से अन्य भी बहुत प्रकार के विशेष तत्त्वों का, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गणों के आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास-संख्या, उनके आयाम-विष्कम्भ का प्रमाण, उपपात (जन्म), च्यवन (मरण), अवगाहना, उपधि, वेदना, विधान (भेद), उपयोग, योग (इन्द्रिय), कषाय, नाना प्रकार की

जीव-योनियाँ, पर्वत-कूट आदि के विष्कम्भ (चौड़ाई), उत्सेध (ऊंचाई), परिरय (परिधि) के प्रमाण, मन्दर आदि महीधरों (पर्वतों) के विधि (भेद) विशेष, कुलकरों, तीर्थंकरों, गणधरों, समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी चक्रवर्तीयों का, चक्रधर वासुदेवों और हलधरों (बलदेवों) का, क्षेत्रों का, निर्गमों को अर्थात् पूर्व-पूर्व क्षेत्रों से उत्तर के (आगे के) क्षेत्रों के अधिक विस्तार का, तथा इसी प्रकार के अन्य भी पदार्थों का इस समवायाङ्ग में विस्तार से वर्णन किया गया है ।

समवायाङ्ग की वाचनाएं परीत हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ़ संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं और निर्युक्तियाँ संख्यात हैं ।

अंग की अपेक्षा यह चौथा अंग है, इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है, एक उद्देशन काल है, (एक समुद्देशन-काल है), पद-गणना की अपेक्षा इसके एक लाख चवालीस हजार पद हैं । इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम (ज्ञान-प्रकार) हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस, अनन्त स्थावर तथा शाश्वत, कृत (अनित्य), निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह चोथा समवायाङ्ग है ।

सूत्र - २२१

व्याख्याप्रज्ञप्ति क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

व्याख्याप्रज्ञप्ति के द्वारा स्वसमय का व्याख्यान किया जाता है, परसमय का व्याख्यान किया जाता है तथा स्वसमय–परसमय का व्याख्यान किया जाता है । जीव व्याख्यात किये जाते हैं, अजीव व्याख्यात किये जाते हैं तथा जीव और अजीव व्याख्यात किये जाते हैं । लोक व्याख्यात किया जाता है, अलोक व्याख्यात किया जाता है। तथा लोक और अलोक व्याख्यात किये जाते हैं ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में नाना प्रकार के देवों, नरेन्द्रों, राजर्षियों और अनेक प्रकार के संशयों में पड़े हुए जनों के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का और जिनेन्द्र देव के द्वारा भाषित उत्तरों का वर्णन किया गया है । तथा द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश-परिमाण, यथास्थित भाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सुनिपुण-उपक्रमों के विविध प्रकारों के द्वारा प्रकट रूप से प्रकाशित करने वाले, लोकालोक के प्रकाशक, विस्तृत संसार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, इन्द्रों द्वारा संपूजित, भव्य जन प्रजा के, अथवा भव्य जनपदों के हृदयों को अभिनन्दित करने वाले, तमोरज का विध्वंसन करने वाले, सुदृष्ट (सुनिर्णीत) दीपक स्वरूप, ईहा, मति और बुद्धि को बढ़ाने वाले ऐसे अन्यून (पूरे) छत्तीस हजार व्याकरणों (प्रश्नों के उत्तरों) को दिखाने से यह व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्रार्थ के अनेक प्रकारों का प्रकाशक है, शिष्यों का हित-कारक है और गुणों से महान अर्थ से परिपूर्ण है ।

व्याख्याप्रज्ञप्ति की वाचनाएं परीत हैं, अनुयोगद्वार संख्यात हैं, प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, वेढ़ (छन्दोविशेष) संख्यात हैं, श्लोक संख्यात हैं और निर्युक्तियाँ संख्यात हैं ।

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग रूप से पाँचवा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, सौ से कुछ अधिक अध्ययन है, दश हजार उद्देशक हैं, दश हजार समुद्देशक हैं, छत्तीस हजार प्रश्नों के उत्तर हैं । पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त-भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु के स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह पाँचवे व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२२

ज्ञाताधर्मकथा क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञात अर्थात् उदाहरणरूप मेघकुमार आदि पुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजा,

माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, दीक्षापर्याय, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, सुकुल में पुनर्जन्म, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रियाएं कही जाती हैं । इनकी प्ररूपणा की गई है, दर्शायी गई है, निदर्शित की गई है और उपदर्शित की गई है ।

ज्ञाताधर्मकथा में प्रव्रजित पुरुषों के विनय-करण-प्रधान, प्रवर जिन भगवान के शासन की संयम-परिज्ञा के पालन करने में जिनकी धृति (धीरता) मति (बुद्धि) और व्यवसाय (पुरुषार्थ) दुर्बल है, तपश्चरण का नियम और तप का परिपालन करने रूप रण (युद्ध) के दुर्धर भार को वहन करने से भग्न है–पराङ्मुख हो गए हैं, अत एव अत्यन्त अशक्त होकर संयम-पालन करने का संकल्प छोड़कर बैठ गए हैं, घोर परीषहों से पराजित हो चूके हैं इसलिए संयम के साथ प्रारम्भ किये गए मोक्ष-मार्ग के अवरुद्ध हो जाने से जो सिद्धालय के कारणभूत महामूल्य ज्ञानादि से पतित हैं, जो इन्द्रियों के तुच्छ विषय-सुखों की आशा के वश होकर रागादि दोषों से मूर्च्छित हो रहे हैं, चारित्र, ज्ञान, दर्शन स्वरूप यति-गुणों से उनके विविध प्रकारों के अभाव से जो सर्वथा निःसार और शून्य हैं, जो संसार के अपार दुःखों की और नरक, तिर्यंचादि नाना दुर्गतियों की भव-परम्परा से प्रपंच में पड़े हुए हैं, ऐसे पतित पुरुषों की कथाएं हैं ।

तथा जो धीर वीर हैं, परीषहों और कषायों की सेना को जीतने वाले हैं, धैर्य के धनी हैं, संयम में उत्साह रखने और बल-वीर्य के प्रकट करने में दृढ़ निश्चय वाले हैं, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और समाधि-योग की जो आराधना करने वाले हैं, मिथ्यादर्शन, माया और निदानादि शल्यों से रहित होकर शुद्ध निर्दोष सिद्धालय के मार्ग की ओर अभिमुख हैं, ऐसे महापुरुषों की कथाएं इस अंग में कही गई हैं ।

तथा जो संयम-परिपालन कर देवलोक में उत्पन्न हो देव-भवनों और देव-विमानों के अनुपम सुखों को और दिव्य, महामूल्य, उत्तम भोग-उपभोगों को चिर-काल तक भोगकर कालक्रम के अनुसार वहाँ से च्युत हो पुनः यथा-योग्य मुक्ति के मार्ग को प्राप्त कर अन्तक्रिया के समाधिमरण के समय कर्म-वश विचलित हो गए हैं, उनको देवों और मनुष्यों के द्वारा धैर्य धारण कराने में कारणभूत, संबोधनों और अनुशासनों को, संयम के गुण और संयम से पतित होने के दोष-दर्शक दृष्टान्तों को, तथा प्रत्ययों को, अर्थात् बोधि के कारणभूत वाक्यों को सूनकर शुकपरि-व्राजक आदि लौकिक मुनिजन भी जरा-मरण का नाश करने वाले जिन-शासन में जिस प्रकार से स्थित हुए, उन्होंने जिस प्रकार से संयम की आराधना की, पुनः देवलोक में उत्पन्न हुए, वहाँ से आकर मनुष्य हो जिस प्रकार शाश्वत सुख को और सर्वदुःख विमोक्ष को प्राप्त किया, उनकी तथा इसी प्रकार के अन्य महापुरुषों की कथाएं इस अंग में विस्तार से कही गई हैं ।

ज्ञाताधर्मकथा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

यह ज्ञाताधर्मकथा अंगरूप से छठा अंग है । इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं और उन्नीस अध्ययन हैं । वे संक्षेप से दो प्रकार के कहे गए हैं–चरित और कल्पित ।

धर्मकथाओं के दश वर्ग हैं । उनमें से एक-एक धर्मकथा में पाँच-पाँच सौ आख्यायिकाएं हैं, एक-एक आख्यायिका में पाँच-पाँच सौ उपाख्यायिकाएं हैं, एक-एक उपाख्यायिका में पाँच-पाँच सौ आख्यायिका-उपाख्या-यिकाएं हैं । इस प्रकार ये सब पूर्वापर से गुणित होकर एक सौ इक्कीस करोड़, पचास लाख होती हैं । धर्मकथा विभाग के दश वर्ग कहे गए हैं । अतः उक्त राशि को दश से गुणित करने पर एक सौ पच्चीस करोड़ संख्या होती है। उसमें समान लक्षण वाली पुनरुक्त कथाओं को घटा देने पर साढ़े तीन करोड़ अपुनरुक्त कथाएं हैं ।

ज्ञाताधर्मकथा में उनतीस उद्देशन काल हैं, उनतीस समुद्देशन-काल हैं, पद-गणना की अपेक्षा संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस ज्ञाताधर्मकथा में कहे गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, निदर्शित किये गए हैं, और उपदर्शित किये गए हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा (कथाओं के माध्यम से) वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया

गया है । यह छठे ज्ञाताधर्मकथा अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२३

उपासकदशा क्या है–उसमें क्या वर्णन है ?

उपासकदशा में उपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, उपासकों के शीलव्रत, पाप-विरमण, गुण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास-प्रतिपत्ति, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, ग्यारह प्रतिमा, उपसर्ग, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोकगमन, सुकुल-प्रत्यागमन, पुनःबोधिलाभ और अन्तक्रिया का कथन किया गया है, प्ररूपणा की गई है, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

उपासकदशांग में उपासकों (श्रावकों) की ऋद्धि-विशेष, परीषद् (परिवार), विस्तृत धर्म-श्रवण, बोधिलाभ, धर्माचार्य के समीप अभिगमन, सम्यक्त्व की विशुद्धता, व्रत की स्थिरता, मूलगुण और उत्तर गुणों का धारण, उनके अतिचार, स्थिति-विशेष (उपासक-पर्याय का काल-प्रमाण), प्रतिमाओं का ग्रहण, उनका पालन, उपसर्गों का सहन या निरुपसर्ग-परिपालन, अनेक प्रकार के तप, शील, व्रत, गुण, वैरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास और अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना जोषमणा (सेवना) से आत्मा को यथाविधि भावित कर, बहुत से भक्तों (भक्तजनों) को अनशन तप से छेदन कर, उत्तम श्रेष्ठ देव-विमानों में उत्पन्न होकर, जिस प्रकार वे उन उत्तम विमानों में अनुपम उत्तम सुखों का अनुभव करते हैं, उन्हें भोगकर फिर आयु का क्षय होने पर च्युत होकर (मनुष्यों में उत्पन्न होकर) और जिनमत में बोधि को प्राप्त कर तथा उत्तम संयम धारण कर तमोरज (अज्ञान-अन्धकार रूप पाप-धूलि) के समूह से विप्रमुक्त होकर जिस प्रकार अक्षय शिव-सुख को प्राप्त हो सर्व दुःखों से रहित होते हैं, इन सबका और इसी प्रकार के अन्य भी अर्थों का इस उपासकदशा में विस्तार से वर्णन है ।

उपासकदशा अंग में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

यह उपासकदशा अंग की अपेक्षा सातवा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन है, दश उद्देशन-काल है, दश समुद्देशन-काल है । पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं, संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सब शाश्वत, अशाश्वत, निबद्ध निकाचित जिनप्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, प्ररूपित किये गए हैं, निदर्शित और उपदर्शित किये गए हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह सातवे उपासकदशा अंग का विवरण है ।

सूत्र - २२४

अन्तकृद्दशा क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

अन्तकृत्दशाओं में कर्मों का अन्त करने वाले महापुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजा, माता-पिता समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, अनेक प्रकार की प्रतिमाएं, क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच, सत्तरह प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, आकिंचन्य, तप, त्याग का तथा समितियों और गुप्तियों का वर्णन है । अप्रमाद-योग और स्वाध्याय-ध्यान योग, इन दोनों उत्तम मुक्ति-साधनों का स्वरूप उत्तम संयम को प्राप्त करके परीषहों को सहन करने वालों को चार प्रकार के घातिकर्मों के क्षय होने पर जिस प्रकार केवलज्ञान का लाभ हुआ, जितने काल तक श्रमण-पर्याय और केवलि-पर्याय का पालन किया, जिन मुनियों ने जहाँ पादपोपगमन अनशन किया, जो जहाँ जितने भक्तों का छेदन कर अन्तकृत् मुनिवर अज्ञानान्धकार रूप रज के पूँज से विप्रमुक्त हो अनुत्तर मोक्ष-सुख को प्राप्त हुए, उनका और इसी प्रकार के अन्य अनेक पदार्थों का इस अंग में विस्तार से प्ररूपण किया गया है ।

अन्तकृत्दशा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ और श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

अंग की अपेक्षा यह आठवा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है । दश अध्ययन है, सात वर्ग है, दश उद्देशन-

काल है, दश समुद्देशन-काल है, पदगणना की अपेक्षा संख्यात हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सभी शाश्वत, अशाश्वत निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग के द्वारा कहे जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग का अध्येता आत्मा ज्ञाता हो जाता है, विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । यह आठवे अन्तकृत्दशा अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२५

अनुत्तरोपपातिकदशा क्या है ? इसमें क्या वर्णन है ?

अनुत्तरोपपातिकदशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले महा अनगारों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजगण, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक पारलौकिक विशिष्ट ऋद्धियाँ, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत का परिग्रहण, तप-उपधान, पर्याय, प्रतिमा, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, अनुत्तर विमानों में उत्पाद, फिर सुकुल में जन्म, पुनः बोधि-लाभ और अन्तक्रियाएं कही गई हैं, उनकी प्ररूपणा की गई हैं, उनका दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन कराया गया है ।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परम मंगलकारी, जगत्-हीतकारी तीर्थंकरों के समवसरण और बहुत प्रकार के जिन-अतिशयों का वर्णन है । तथा जो श्रमणजनों में प्रवरगन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ हैं, स्थिर यश वाले हैं, परीषह–सेना रूपी शत्रु-बल के मर्दन करने वाले हैं, तप से दीप्त हैं, जो चारित्र, ज्ञान, सम्यक्त्वरूप सार वाले अनेक प्रकार के विशाल प्रशस्त गुणों से संयुक्त हैं, ऐसे अनगार महर्षियों के अनगार-गुणों का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन है । अतीव, श्रेष्ठ तपोविशेष से और विशिष्ट ज्ञान-योग से युक्त हैं, जिन्होंने जगत् हीतकारी भगवान तीर्थंकरों की जैसी परम आश्चर्यकारिणी ऋद्धियों की विशेषताओं को और देव, असुर, मनुष्यों की सभाओं के प्रादुर्भाव को देखा है, वे महापुरुष जिस प्रकार जिनवर के समीप जाकर उनकी जिस प्रकार से उपासना करते हैं, तथा अमर, नर, सुरगणों के लोकगुरु वे जिनवर जिस प्रकार से उनको धर्म का उपदेश देते हैं, वे क्षीणकर्मा महापुरुष उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म को सूनकर के अपने समस्त कामभोगों से और इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर जिस प्रकार से उदार धर्म को और विविध प्रकार से संयम और तप को स्वीकार करते हैं ।

तथा जिस प्रकार से बहुत वर्षों तक उनका आचरण करके, ज्ञान, दर्शन, चारित्र योग की आराधना कर जिन-वचन के अनुगत (अनुकूल) पूजित धर्म का दूसरे भव्य जीवों को उपदेश देकर और अपने शिष्यों को अध्ययन करवा तथा जिनवरों की हृदय से आराधना कर वे उत्तम मुनिवर जहाँ पर जितने भक्तों का अनशन के द्वारा छेदन कर, समाधि को प्राप्त कर और उत्तम ध्यान-योग से युक्त होते हुए जिस प्रकार से अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं और वहाँ जैसे अनुपम विषय-सौख्य को भोगते हैं, उस सब का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वे जिस प्रकार से संयम को धारण कर अन्तक्रिया करेंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे, इन सबका तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों का विस्तार से इस अंग में वर्णन किया गया है ।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

यह अनुत्तरोपपातिकदशा अंगरूप से नौवा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं, तीन वर्ग हैं, दश उद्देशन-काल हैं, दश समुद्देशन-काल हैं, तथा पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं । इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परिमित त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सब शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित, जिन-प्रज्ञप्त भाव इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है। यह नौवें अनुत्तरोपपातिकदशा अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२६

प्रश्नव्याकरण अंग क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

प्रश्नव्याकरण अंग में एक सौ आठ प्रश्नों, एक सौ आठ अप्रश्नों और एक सौ आठ प्रश्ना-प्रश्नों को, विद्याओं को, अतिशयों को तथा नागों-सुपर्णों के साथ दिव्य संवादों को कहा गया है ।

प्रश्नव्याकरणदशा में स्वसमय–परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येकबुद्धों के विविध अर्थों वाली भाषाओं द्वारा कथित वचनों का आमषौषधि आदि अतिशयों, ज्ञानादि गुणों और उपशम भाव के प्रतिपादक नाना प्रकार के आचार्यभाषितों का, विस्तार से कहे गए वीर महर्षियों के जगत् हितकारी अनेक प्रकार के विस्तृत सुभाषितों का, आदर्श (दर्पण) अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षौम (वस्त्र) और सूर्य आदि के आश्रय से दिये गए विद्या-देवताओं के उत्तरों का इस अंग में वर्णन है । अनेक महाप्रश्नविद्याएं वचन से ही प्रश्न करने पर उत्तर देती हैं, अनेक विद्याएं मन से चिन्तित प्रश्नों का उत्तर देती हैं, अनेक विद्याएं अनेक अधिष्ठाता देवताओं के प्रयोग-विशेष की प्रधानता से अनेक अर्थों के संवादक गुणों को प्रकाशित करती हैं और अपने सद्भूत (वास्तविक) द्विगुण प्रभावक उत्तरों के द्वारा जन समुदाय को विस्मित करती हैं

उन विद्याओं के चमत्कारों और सत्य वचनों से लोगों हृदयों में यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है कि अतीत काल के समय में दम और शम के धारक, अन्य मतों के शास्ताओं से विशिष्ट जिन तीर्थंकर हुए हैं और वे यथार्थ-वादी थे, अन्यथा इस प्रकार के सत्य विद्यामंत्र संभव नहीं थे, इस प्रकार संशयशील मनुष्यों के स्थिरीकरण के कारणभूत दुरभिगम (गम्भीर) और दुरवगाह (कठिनता से अवगाहन-करने के योग्य) सभी सर्वज्ञों के द्वारा सम्मत, अबुध (अज्ञ) जनों को प्रबोध करने वाले, प्रत्यक्ष प्रतीति-कारक प्रश्नों के विविध गुण और महान् अर्थ वाले जिनवर-प्रणीत उत्तर इस अंग में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं, और उपदर्शित किये जाते हैं

प्रश्नव्याकरण अंग में परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

प्रश्नव्याकरण अंगरूप से दशवा अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, पैंतालीस उद्देशन-काल हैं, पैंतालीस समुद्देशन-काल हैं । पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं । इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं, इसमें शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह दशवे प्रश्नव्याकरण अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२७

विपाकसूत्र क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

विपाकसूत्र में सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) कर्मों का विपाक कहा गया है । यह विपाक संक्षेप से दो प्रकार का है–दुःख विपाक और सुख-विपाक । इनमें दुःख-विपाक में दश अध्ययन हैं और सुख-विपाक में भी दश अध्ययन हैं ।

यह दुःख विपाक क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

दुःख-विपाक में दुष्कृतों के दुःखरूप फलों को भोगने वालों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, (गौतम स्वामी का भिक्षा के लिए) नगर-गमन, (पाप के फल से) संसार-प्रबन्ध में पड़कर दुःख परम्पराओं को भोगने का वर्णन किया जाता है । यह दुःख-विपाक है ।

सुख-विपाक क्या है ? इसमें क्या वर्णन है ?

सुख-विपाक में सुकृतों के सुखरूप फलों को भोगने वालों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धिविशेष, भोगपरित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय, प्रतिमाएं, संलेखनाएं, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, सुकुल-

प्रत्यागमन पुनः बोधिलाभ और उनकी अन्तक्रियाएं कही गई हैं ।

दुःख विपाक के प्राणातिपात, असत्य वचन, स्तेय, पर-दार-मैथुन, ससंगता (परिग्रह-संचय), महातीव्र कषाय, इन्द्रिय-विषय-सेवन, प्रमाद, पाप-प्रयोग और अशुभ अध्यवसानों (परिणामों) से संचित पापकर्मों के उन पापरूप अनुभाग–फल-विपाकों का वर्णन किया गया है जिन्हें नरकगति और तिर्यग्-योनि में बहुत प्रकार के सैकड़ों संकटों की परम्परा में पड़कर भोगना पड़ता है ।

वहाँ से नीकलकर मनुष्य भव में आने पर भी जीवों को पाप-कर्मों के शेष रहने से अनेक पापरूप अशुभ-फल-विपाक भोगने पड़ते हैं, जैसे–वध (दण्ड आदि से ताड़न), वृषण-विनाश (नपुंसकीकरण), नासा-कर्तन, कर्ण-कर्तन, ओष्ठ-छेदन, अंगुष्ठ-छेदन, हस्त-कर्तन, चरण-छेदन, नख-छेदन, जिह्वा-छेदन, अंजन-दाह (उष्ण लोह-शलाका से आँखों को आंजना-फोड़ना), कटाग्निदाह (बाँस से बनी चटाई से शरीर को सर्व ओर से लपेटकर जलाना), हाथी के पैरों के नीचे डालकर शरीर को कुचलवाना, फरसे आदि से शरीर को फाड़ना, रस्सियों से बाँधकर वृक्षों पर लटकाना, त्रिशूल-लता, लकुट (मूँठ वाला डंडा) और लकड़ी से शरीर को भग्न करना, तपे हुए कड़कड़ाते रांगा, सीसा एवं तेल से शरीर का अभिसिंचन करना, कुम्भी (लोहभठ्ठी) में पकाना, शीतकाल में शरीर पर कंपकंपी पैदा करने वाला अतिशीतल जल डालना, काष्ठ आदि में पैर फँसाकर स्थिर (दृढ़) बाँधना, भाले आदि शस्त्रों से छेदन-भेदन करना, वर्द्धकर्तन (शरीर की खाल उधेड़ना) अति भयकारक कर–प्रदीपन (वस्त्र लपेटकर और शरीर पर तेल डालकर दोनों हाथों में अग्नि लगाना) आदि अति दारुण, अनुपम दुःख भोगने पड़ते हैं । अनेक भव-परम्परा में बंधे हुए पापी जीव पाप कर्मरूपी वल्ली के दुःख-रूप फलों को भोगे बिना नहीं छूटते हैं । क्योंकि कर्मों के फलों को भोगे बिना उनसे छूटकारा नहीं मिलता । हाँ, चित्त-समाधिरूप धैर्य के साथ जिन्होंने अपनी कमर कस ली है उनके तप द्वारा उन पापकर्मों का भी शोधन हो जाता है ।

अब सुख-विपाकों का वर्णन किया जाता है–जो शील (ब्रह्मचर्य या समाधि), संयम, नियम (अभिग्रह-विशेष), गुण (मूलगुण और उत्तरगुण) और तप (अन्तरंग-बहिरंग) के अनुष्ठान में संलग्न हैं, जो अपने आचार का भली भाँति से पालन करते हैं, ऐसे साधुजनों में अनेक प्रकार की अनुकम्पा का प्रयोग करते हैं, उनके प्रति तीनों ही कालों में विशुद्ध बुद्धि रखते हैं अर्थात् यतिजनों को आहार दूँगा, यह विचार करके जो हर्षानुभव करते हैं, देते समय और देने के पश्चात् भी हर्ष मानते हैं, उनको अति सावधान मन से हीतकारक, सुखकारक, निःश्रेयसकारक उत्तम शुभ परिणामों से प्रयोग-शुद्ध (उद्गमादि दोषों से रहित) भक्त-पान देते हैं, वे मनुष्य जिस प्रकार पुण्य कर्म का उपार्जन करते हैं, बोधि-लाभ को प्राप्त होते हैं और नर, नारक, तिर्यंच एवं देवगति-गमन सम्बन्धी अनेक परावर्तनों को परीत (सीमित–अल्प) करते हैं, तथा जो अरति, भय, विस्मय, शोक और मिथ्यात्वरूप शैल (पर्वत) से संकट (संकीर्ण) हैं, गहन अज्ञान-अन्धकार रूप कीचड़ से परिपूर्ण होने से जिसका पार उतरना अति कठिन है, जिसका चक्रवाल (जल-परिमंडल) जरा, मरण योनिरूप मगरमच्छों से क्षोभित हो रहा है, जो अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषायरूप श्वापदों (खूँखार हिंसक प्राणियों) से अति प्रचण्ड अत एव भयंकर हैं ।

ऐसे अनादि अनन्त इस संसार-सागर को वे जिस प्रकार पार करते हैं, और जिस प्रकार देवगणों में आयु बाँधते–देवायु का बंध करते हैं, तथा जिस प्रकार सुरगणों के अनुपम विमानोत्पन्न सुखों का अनुभव करते हैं, तत्पश्चात् कालान्तर में वहाँ से च्युत होकर इसी मनुष्यलोक में आकर दीर्घ आयु, परिपूर्ण शरीर, उत्तम रूप, जाति कुल में जन्म लेकर आरोग्य, बुद्धि, मेघा-विशेष से सम्पन्न होते हैं, मित्रजन, स्वजन, धन, धान्य और वैभव से समृद्ध, एवं सारभूत सुखसम्पदा के समूह से संयुक्त होकर बहुत प्रकार के कामभोग-जनित, सुख-विपाक से प्राप्त उत्तम सुखों की अनुपरत (अविच्छिन्न) परम्परा से परिपूर्ण रहते हुए सुखों को भोगते हैं, ऐसे पुण्यशाली जीवों का इस सुख-विपाक में वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों के बहुत प्रकार के विपाक (फल) इस विपाकसूत्र में भगवान जिनेन्द्र देव ने संसारी जनों को संवेग उत्पन्न करने के लिए कहे हैं । इसी प्रकार से अन्य भी बहुत प्रकार की अर्थ-प्ररूपणा विस्तार से इस अंग में की गई है ।

विपाकसूत्र की परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ़ हैं,

संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

यह विपाकसूत्र अंगरूप से ग्यारहवा अंग है । बीस अध्ययन है, बीस उद्देशन-काल है, बीस समुद्देशन-काल है, पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं । संख्यात अक्षर है, अनन्त गम है, अनन्त पर्याय है, परीत त्रस है, अनन्त स्थावर है । इसमें शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं । इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तुस्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह ग्यारहवे विपाक सूत्र अंग का परिचय है ।

सूत्र - २२८

यह दृष्टिवाद अंग क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

दृष्टिवाद अंग में सर्व भावों की प्ररूपणा की जाती है । वह संक्षेप से पाँच प्रकार का कहा गया है । जैसे–परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका ।

परिकर्म क्या है ? परिकर्म सात प्रकार का कहा गया है । जैसे–सिद्धश्रेणीका परिकर्म, मनुष्यश्रेणिका परिकर्म, पृष्टश्रेणिका परिकर्म, अवगाहनश्रेणिका परिकर्म, उपसंपद्यश्रेणिका परिकर्म, विप्रजहतश्रेणिका परिकर्म और च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ।

सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है ? सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है । जैसे–मातृकापद, एकार्थकपद, अर्थपद, पाठ, आकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूतप्रतिग्रह, संसार-प्रतिग्रह, नन्द्यावर्त और सिद्धबद्ध । यह सब सिद्ध श्रेणिका परिकर्म हैं ।

मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म क्या है ? मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है । जैसे–मातृकापद से लेकर वे ही पूर्वोक्त नन्द्यावर्त तक और मनुष्यबद्ध । यह सब मनुष्यश्रेणिका परिकर्म हैं ।

पृष्ठश्रेणिका परिकर्म से लेकर शेष परिकर्म ग्यारह-ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं । पूर्वोक्त सातों परिकर्म स्व-सामयिक (जैनमतानुसारी) हैं, सात आजीविकामतानुसारी हैं, छह परिकर्म चतुष्कनय वालों के मतानुसारी हैं और सात त्रैराशिक मतानुसारी हैं । इस प्रकार ये सातों परिकर्म पूर्वापर भेदों की अपेक्षा तिरासी होते हैं, यह सब परिकर्म हैं

सूत्र का स्वरूप क्या है ? सूत्र अठासी होते हैं, ऐसा कहा गया है । जैसे–१. ऋजुक, २. परिणतापरिणत, ३. बहुभंगिक, ४. विजयचर्या, ५. अनन्तर, ६. परम्पर, ७. समान (समानस), ८. संजूह-संयूथ, ९. संभिन्न, १०. अहाच्चय, ११. सौवस्तिक, १२. नन्द्यावर्त, १३. बहुल, १४. पृष्टापृष्ट, १५. व्यावृत्त, १६. एवंभूत, १७. द्वयावर्त, १८. वर्तमानात्मक, १९. समभिरूढ, २०. सर्वतोभद्र, २१. पणाम (पण्णास) और २२. दुष्प्रतिग्रह । ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्र परिपाटी से छिन्नच्छेद-नयिक हैं । ये ही बाईस सूत्र आजीविकसूत्रपरिपाटी से अच्छिन्नच्छेदनयिक हैं । ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्रपरिपाटी से त्रिकनयिक हैं और ये ही बाईस सूत्र स्वसमय सूत्रपरिपाटी से चतुष्क-नयिक हैं । इस प्रकार ये सब पूर्वापर भेद मिलकर अठासी सूत्र होते हैं, ऐसा कहा गया है । यह सूत्र नाम का दूसरा भेद है ।

यह पूर्वगत क्या है–इसमें क्या वर्णन है ?

पूर्वगत चौदह प्रकार के कहे गए हैं । जैसे–उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवाद-पूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, विद्यानुप्रवादपूर्व, अबन्ध्य-पूर्व, प्राणायुपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिन्दुसारपूर्व ।

उत्पादपूर्व की दश वस्तु (अधिकार) हैं और चार चूलिकावस्तु है । अग्रायणीय पूर्व की चौदह वस्तु और बारह चूलिकावस्तु है । वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु है । अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की अठारह वस्तु और दश चूलिकावस्तु है । ज्ञानप्रवाद पूर्व की बारह वस्तु हैं । सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु हैं । आत्मप्रवाद पूर्व की सोलह वस्तु हैं । कर्मप्रवाद पूर्व की तीस वस्तु हैं । प्रत्याख्यान पूर्व की बीस वस्तु हैं । विद्यानुप्रवादपूर्व की पन्द्रह वस्तु है । क्रियाविशाल पूर्व की तीस वस्तु है । लोकबिन्दुसारपूर्व की पच्चीस वस्तु कही गई हैं ।

सूत्र - २२९

प्रथम पूर्व में दश, दूसरे में चौदह, तीसरे में आठ, चौथे में अठारह, पाँचवे में बारह, छठे में दो, सातवे में सोलह, आठवे में तीस, नवे में बीस, दशवे विद्यानुप्रवाद में पन्द्रह । तथा–

सूत्र - २३०

ग्यारहवे में बारह, बारहवे में तेरह, तेरहवे में तीस और चौदहवे में पच्चीस वस्तु नामक महाधिकार है ।

सूत्र - २३१

आदि के चार पूर्वों में क्रम से चार, बारह, आठ और दश चूलिकावस्तु नामक अधिकार हैं । शेष दश पूर्वों में चूलिका नामक अधिकार नहीं है । यह पूर्वगत है ।

सूत्र - २३२

वह अनुयोग क्या है–उसमें क्या वर्णन है ?

अनुयोग दो प्रकार का कहा गया है । जैसे–मूलप्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग ।

मूलप्रथमानुयोग में क्या है ? मूलप्रथमानुयोग में अरहन्त भगवंतों के पूर्वभव, देवलोकगमन, देवभव सम्बन्धी आयु, च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, राज्यवरश्री, शिबिका, प्रव्रज्या, तप, भक्त, केवलज्ञानोत्पत्ति, वर्ण, तीर्थ -प्रवर्तन, संहनन, संस्थान, शरीर-उच्चता, आयु, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, केवलि-जिन, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक् मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले साधु, सिद्ध, पादपोपगत, जो जहाँ जितने भक्तों का छेदन कर उत्तम मुनिवर अन्तकृत हुए, तमोरज-समूह से विप्रमुक्त हुए, अनुत्तर सिद्धिपथ को प्राप्त हुए, इन महापुरुषों का, तथा इसी प्रकार के अन्य भाव मूलप्रथमानुयोग में कहे गए हैं, वर्णित किये गए हैं, प्रज्ञापित किये गए हैं, प्ररूपित किये गए हैं, निदर्शित किये गए हैं और उपदर्शित किये गए हैं । यह मूलप्रथमानुयोग हैं ।

गंडिकानुयोग में क्या है ? गंडिकानुयोग अनेक प्रकार का है । जैसे–कुलकरगंडिका, तीर्थंकरगंडिका, गणधरगंडिका, चक्रवर्तीगंडिका, दशारगंडिका, बलदेवगंडिका, वासुदेवगंडिका, हरिवंशगंडिका, भद्रबाहुगंडिका, तपःकर्मगंडिका, चित्रान्तरगंडिका, उत्सर्पिणीगंडिका, अवसर्पिणी गंडिका, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियों में गमन, तथा विविध योनियों में परिवर्तनानुयोग, इत्यादि गंडिकाएं इस गंडिकानुयोग में कही जाती हैं, प्रज्ञापित की जाती हैं, प्ररूपित की जाती हैं, निदर्शित की जाती हैं और उपदर्शित की जाती हैं । यह गंडिकानुयोग है ।

यह चूलिका क्या है ? आदि के चार पूर्वों में चूलिका नामक अधिकार है । शेष दश पूर्वों में चूलिकाएं नहीं हैं। यह चूलिका है ।

दृष्टिवाद की परीत वाचनाएं हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं । संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं, संख्यात श्लोक हैं और संख्यात संग्रहणियाँ हैं ।

यह दृष्टिवाद अंगरूप से बारहवा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, चौदह पूर्व हैं, संख्यात वस्तु है, संख्यात चूलिका वस्तु है, संख्यात प्राभृत हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृत हैं, संख्यात प्राभृतिकाएं हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृतिकाएं हैं पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं । संख्यात अक्षर हैं । अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं । ये सब शाश्वत, कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव इस दृष्टिवाद में कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते और उपदर्शित किये जाते हैं ।

इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है । इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तुस्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता है । यह बारहवा दृष्टिवाद अंग है । यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक का वर्णन है ।

सूत्र - २३३

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र रूप, अर्थरूप और उभयरूप आज्ञा का विराधन करके अर्थात् दुराग्रह के वशीभूत होकर अन्यथा सूत्रपाठ करके, अन्यथा अर्थकथन करके और अन्यथा सूत्रार्थ-उभय की प्ररूपणा

करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार (गहन वन) में परिभ्रमण किया है, इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का विराधन करके वर्तमान काल में परीत (परिमित) जीव चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार में परिभ्रमण कर रहे हैं और इसी द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का विराधन कर भविष्यकाल में अनन्त जीव चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार में परिभ्रमण करेंगे ।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का आराधन करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गति रूप संसार-कान्तार को पार किया है (मुक्ति को प्राप्त किया है) । वर्तमान काल में भी (परिमित) जीव इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार कर रहे हैं और भविष्यकाल में भी अनन्त जीव इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की सूत्र, अर्थ और उभयरूप आज्ञा का आराधन करके चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को पार करेंगे ।

यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है । किन्तु भूतकाल में भी यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक था, वर्तमान काल में भी है और भविष्यकाल में भी रहेगा । क्योंकि यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना देने पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण अक्षय है, गंगा-सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है, जम्बूद्वीपादि के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है ।

जिस प्रकार पाँच अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में कभी नहीं थे ऐसा नहीं, वर्तमान काल में कभी नहीं है ऐसा भी नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेंगे, ऐसा भी नहीं है । किन्तु ये पाँचों अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में भी थे, वर्तमानकाल में भी हैं और भविष्यकाल में भी रहेंगे । अतएव ये ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं और नित्य हैं ।

इसी प्रकार यह द्वादशाङ्ग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है ऐसा नहीं है और भविष्यकाल में नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है । किन्तु भूतकाल में भी यह था, वर्तमान काल में भी यह है और भविष्य काल में भी रहेगा । अतएव यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है ।

इस द्वादशाङ्ग गणि-पिटक में अनन्त भाव (जीवादि स्वरूप से सत् पदार्थ) और अनन्त अभाव (पररूप से असत् जीवादि वही पदार्थ) अनन्त हेतु, उनके प्रतिपक्षी अनन्त अहेतु; इसी प्रकार अनन्त कारण, अनन्त अकारण; अनन्त जीव, अनन्त अजीव; अनन्त भव्यसिद्धिक, अनन्त अभव्यसिद्धिक; अनन्त सिद्ध तथा अनन्त असिद्ध कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, दर्शित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं ।

सूत्र - २३४

दो राशियाँ कही गई हैं–जीवराशि और अजीवराशि । अजीवराशि दो प्रकार की कही गई है–रूपी अजीव-राशि और अरूपी अजीवराशि ।

अरूपी अजीवराशि क्या है ? अरूपी अजीवराशि दश प्रकार की कही गई है । जैसे–धर्मास्तिकाय यावत् (धर्मास्तिकाय देश, धर्मास्तिकाय प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय देश, अधर्मास्तिकाय प्रदेश, आकाशा-स्तिकाय, आकाशास्तिकाय देश, आकाशास्तिकाय प्रदेश) और अद्धासमय ।

रूपी अजीवराशि अनेक प्रकार की कही गई है...यावत् प्रज्ञापना सूत्रानुसार ।

जीव-राशि क्या है ? जीव-राशि दो प्रकार की कही गई है–संसारसमापन्नक (संसारी जीव) और असंसारी समापन्नक (मुक्त जीव) । इस प्रकार दोनों राशियों के भेद-प्रभेद प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार अनुत्तरोपपातिक सूत्र तक जानना चाहिए ।

ये अनुत्तरोपपातिक देव क्या हैं ? अनुत्तरोपपातिक देव पाँच प्रकार के कहे गए हैं । जैसे–विजय-अनुत्तरो-पपातिक, वैजयन्त-अनुत्तरोपपातिक, जयन्त-अनुत्तरोपपातिक, अपराजित-अनुत्तरोपपातिक और सर्वार्थसिद्धिक

अनुत्तरोपपातिक । ये सब अनुत्तरोपपातिक संसार-समापन्नक जीवराशि हैं । यह सब पंचेन्द्रियसंसार-समापन्नक-जीवराशि हैं ।

नारक जीव दो प्रकार के हैं–पर्याप्त और अपर्याप्त ।

यहाँ पर भी (प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार) वैमानिक देवों तक अर्थात् नारक, असुरकुमार, स्थावरकाय, द्वीन्द्रिय आदि, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिक का सूत्र-दंडक कहना चाहिए ।

(भगवन्) इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास कहे गए हैं ? गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर, तथा सबसे नीचे के एक हजार योजन क्षेत्र को छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख अठहतर हजार योजन वाले रत्नप्रभा पृथ्वी के भाग में तीस लाख नारकावास हैं । वे नारकावास भीतर की ओर गोल और बाहर की ओर चौकोर हैं यावत् वे नरक अशुभ हैं और उन नरकों में अशुभ वेदनाएं हैं । इसी प्रकार सातों ही पृथ्वीयों का वर्णन जिनमें जो युक्त हो, करना चाहिए।

सूत्र - २३५

रत्नप्रभा पृथ्वी का बाहल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है ।

शर्करा पृथ्वी का बाहल्य १,३२,००० योजन है । वालुका पृथ्वी का बाहल्य एक लाख २८.००० योजन है ।

पंकप्रभा पृथ्वी का बाहल्य १,२०,००० योजन है । धूमप्रभा पृथ्वी का बाहल्य १,१८,००० योजन है ।

तमःप्रभा पृथ्वी का बाहल्य १.१६,००० योजन है

और महातमःप्रभा पृथ्वी का बाहल्य १.०८,००० योजन है ।

सूत्र - २३६

रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नारकावास हैं । शर्करा पृथ्वी में पच्चीस लाख नारकावास हैं । वालुका पृथ्वी में पन्द्रह लाख नारकावास हैं । पंकप्रभा पृथ्वी में दश लाख नारकावास हैं । धूमप्रभा पृथ्वी में तीन लाख नारकावास हैं । तमःप्रभा पृथ्वी में पाँच कम एक लाख नारकावास हैं । महातमः पृथ्वी में (केवल) पाँच अनुत्तर नारकावास हैं ।

इसी प्रकार ऊपर की गाथाओं के अनुसार दूसरी पृथ्वी में, तीसरी पृथ्वी में, चौथी पृथ्वी में, पाँचवी पृथ्वी में, छठी पृथ्वी में और सातवी पृथ्वी में नरक बिलों–नारकावासों की संख्या कहनी चाहिए ।

सातवी पृथ्वी में कितना क्षेत्र अवगाहन कर कितने नारकावास हैं ? गौतम ! एक लाख आठ हजार योजन बाहल्य वाली सातवी पृथ्वी में ऊपर से साढ़े बावन हजार योजन अवगाहन कर और नीचे भी साढ़े बावन हजार योजन छोड़कर मध्यवर्ती तीन हजार योजनों में सातवी पृथ्वी के नारकियों के पाँच अनुत्तर, बहुत विशाल महानरक कहे गए हैं । जैसे– काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक और पाँचवा अप्रतिष्ठान नामका नरक है । ये नरक वृत्त (गोल) और त्रयस्त्र हैं, अर्थात् मध्यवर्ती अप्रतिष्ठान नरक गोल आकार वाला है और शेष चारों दिशावर्ती चारों नरक त्रिकोण आकार वाले हैं । नीचे तल भाग में वे नरक क्षुरप्र (खुरपा) के आकार वाले हैं ।... यावत् ये नरक अशुभ हैं और इन नरकों में अशुभ वेदनाएं हैं ।

सूत्र - २३८

भगवन् ! असुरकुमारों के आवास (भवन) कितने कहे गए हैं ? गौतम ! इस एक लाख अस्सी हजार योजन बाहल्य वाली रत्नप्रभा पृथ्वी में ऊपर से एक हजार योजन अवगाहन कर और नीचे एक हजार योजन छोड़कर मध्यवर्ती एक लाख अठहत्तर हजार योजन में रत्नप्रभा पृथ्वी के भीतर असुरकुमारों के चौसठ लाख भवनावास कहे गए हैं । वे भवन बाहर गोल हैं, भीतर चौकोण हैं और नीचे कमल की कर्णिका के आकार से स्थित हैं । उनके चारों ओर खाई और परिखा खुदी हुई हैं जो बहुत गहरी हैं । खाई और परिखा के मध्य में पाल बंधी हुई है । तथा वे भवन अट्टालक, चरिका, द्वार, गोपुर, कपाट, तोरण, प्रतिद्वार, देशरूप भाग वाले हैं, यंत्र, मूसल, भुसुंढी, शतघ्नी, इन शस्त्रों से संयुक्त हैं । शत्रुओं की सेनाओं से अजेय हैं । अड़तालीस कोठों से रचित, अड़तालीस वन-मालाओं से शोभित हैं ।

उनके भूमिभाग और भित्तियाँ उत्तम लेपों से लिपी और चिकनी हैं, गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के सरस

सुगन्धित लेप से उन भवनों की भित्तियों पर पाँचों अंगुलियों युक्त हस्ततल हैं । इसी प्रकार भवनों की सीढ़ियों पर भी गोशीर्षचन्दन और लालचन्दन के रस से पाँचों अंगुलियों के हस्ततल अंकित हैं । वे भवन कालागुरु, प्रधान कुन्दरु और तुरुष्क (लोभान) युक्त धूप के जलते रहने से मधमधायमान, सुगन्धित और सुन्दरता से अभिराम (मनोहर) हैं । वहाँ सुगन्धित अगरबत्तियाँ जल रही हैं ।

वे भवन आकाश के समान स्वच्छ हैं, स्फटिक के समान कान्तियुक्त हैं, अत्यन्त चिकने हैं, घिसे हुए हैं, पालिश किये हुए हैं, नीरज हैं, निर्मल हैं, अन्धकार-रहित हैं, विशुद्ध हैं, प्रभा-युक्त हैं, मरीचियों (किरणों) से युक्त हैं, उद्योत (शीतल प्रकाश) से युक्त हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं । दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं ।

जिस प्रकार से असुरकुमारों के भवनों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार नागकुमार आदि शेष भवन-वासी देवों के भवनों का भी वर्णन जहाँ जैसा घटित और उपयुक्त हो, वैसा करना चाहिए । तथा ऊपर कही गई गाथाओं से जिसके जितने भवन बताये गए हैं, उनका वैसा ही वर्णन करना चाहिए ।

सूत्र - २३९

असुरकुमारों के चौंसठ लाख भवन हैं । नागकुमारों के चौरासी लाख भवन हैं । सुपर्णकुमारों के बहत्तर लाख भवन हैं । वायुकुमारों के छयानवे लाख भवन हैं ।

सूत्र - २४०

द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, अग्निकुमार इन छहों युगलों के बहत्तर लाख भवन हैं ।

सूत्र - २४१

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के आवास कितने कहे गए हैं ?

गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात आवास कहे गए हैं । इसी प्रकार जलकायिक जीवों से लेकर यावत् मनुष्यों तक के जानना चाहिए ।

भगवन् ! वाणव्यन्तरों के आवास कितने कहे गए हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय कांड के एक सौ योजन ऊपर से अवगाहन कर और एक सौ योजन नीचे के भाग को छोड़कर मध्य के आठ सौ योजनों में वाणव्यन्तर देवों के तीरछे फैले हुए असंख्यात लाख भौमेयक नगरावास कहे गए हैं । वे भौमेयक नगर बाहर गोल और भीतर चौकोर हैं । इस प्रकार जैसा भवनवासी देवों के भवनों का वर्णन किया गया है, वैसा ही वर्णन वाणव्यन्तर देवों के भवनों का जानना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि ये पताका-मालाओं से व्याप्त हैं । यावत् सुरम्य हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं ।

भगवन् ! ज्योतिष्क देवों के विमानावास कितने कहे गए हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से सात सौ नब्बे योजन ऊपर जाकर एक सौ दश योजन बाहल्य वाले तीरछे ज्योतिष्क-विषयक आकाशभाग में ज्योतिष्क देवों के असंख्यात विमानावास कहे गए हैं । वे अपने में से नीकलती हुई और सर्व दिशाओं में फैलती हुई प्रभा से उज्ज्वल हैं, अनेक प्रकार के मणि और रत्नों की चित्रकारी से युक्त हैं, वायु से उड़ती हुई विजय-वैजयन्ती पताकाओं से और छत्रातिछत्रों से युक्त हैं, गगनतल को स्पर्श करने वाले ऊंचे शिखर वाले हैं, उनकी जालियों के भीतर रत्न लगे हुए हैं । जैसे पंजर (प्रच्छादन) से तत्काल नीकाली वस्तु सश्रीक–चमचमाती है वैसे ही वे सश्रीक हैं । मणि और सुवर्ण की स्तूपिकाओं से युक्त हैं, विकसित शतपत्रों एवं पुण्डरीकों (श्वेत कमलों) से, तिलकों से, रत्नों के अर्धचन्द्राकार चित्रों से व्याप्त हैं, भीतर और बाहर अत्यन्त चिकने हैं, तपाये हुए स्वर्ण के समान वालुकामयी प्रस्तटों या प्रस्तारों वाले हैं । सुखद स्पर्श वाले हैं, शोभायुक्त हैं, मन को प्रसन्न करने वाले और दर्शनीय हैं

भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने आवास कहे गए हैं ? गौतम ! इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारकाओं को उल्लंघन कर अनेक योजन, अनेक शत योजन, अनेक सहस्र योजन (अनेक शत-सहस्र योजन) अनेक कोटि योजन, अनेक कोटाकोटी योजन, और असंख्यात कोटाकोटी योजन ऊपर बहुत दूर तक आकाश का उल्लंघन कर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म,

लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत कल्पों में, ग्रैवेयकों में और अनुत्तरों में वैमानिक देवों के चौरासी लाख सत्तानवे हजार और तेईस विमान हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे विमान सूर्य की प्रभा के समान प्रभा वाले हैं, प्रकाशों की राशियों (पुंजों) के समान भासुर हैं, अरज (स्वाभाविक रज से रहित) हैं, नीरज (आगन्तुक रज से विहीन) हैं, निर्मल हैं, अन्धकाररहित हैं, विशुद्ध हैं, मरीची-युक्त हैं, उद्योत-सहित हैं, मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं ।

भगवन् ! सौधर्म कल्प में कितने विमानावास कहे गए हैं ?

गौतम ! सौधर्म कल्प में बत्तीस लाख विमानावास कहे गए हैं । इसी प्रकार ईशानादि शेष कल्पों में सहस्रार तक क्रमशः पूर्वोक्त गाथाओं के अनुसार अट्ठाईस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार, छह सौ तथा आनत प्राणत कल्प में चार सौ और आरण-अच्युत कल्प में तीन सौ विमान कहना चाहिए ।

सूत्र - २४२

सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं । ईशानकल्प में अट्ठाईस लाख विमान हैं । सनत्कुमार कल्प में बारह लाख विमान हैं । माहेन्द्रकल्प में आठ लाख विमान हैं । ब्रह्मकल्प में चार लाख विमान हैं । लान्तक कल्प में पचास हजार विमान हैं । महाशुक्र कल्प में चालीस हजार विमान हैं । सहस्रारकल्प में छह हजार विमान हैं । तथा–

सूत्र - २४३

आनत, प्राणत कल्प में चार सौ विमान हैं । आरण और अच्युत कल्प में तीन सौ विमान हैं । इस प्रकार इन चारों ही कल्पों में विमानों की संख्या सात सौ हैं ।

सूत्र - २४४

अधस्तन–नीचे के तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह विमान हैं । मध्यम तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ सात विमान हैं । उपरिम तीनों ही ग्रैवेयकों में एक सौ विमान हैं । अनुत्तर विमान पाँच ही हैं ।

सूत्र - २४५

भगवन् ! नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की कही गई है ।

भगवन् ! अपर्याप्तक नारकों की कितने काल तक स्थिति कही गई है ? गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ।

पर्याप्तक नारकियों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तैंतीस सागरोपम की है । इसी प्रकार इस रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर महातम–प्रभा पृथ्वी तक अपर्याप्तक नारकियों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की तथा पर्याप्तकों की स्थिति वहाँ की सामान्य, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति से अन्तर्मुहूर्त्त अन्तर्मुहूर्त्त कम जाननी चाहिए ।

भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल कही गई है ? गौतम\! जघन्य स्थिति बत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम कही गई है ।

सर्वार्थसिद्ध नामक अनुत्तर विमान में अजघन्य-अनुत्कृष्ट (उत्कृष्ट और जघन्य के भेद से रहित) सब देवों की तैंतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

सूत्र - २४६

भगवन् ! शरीर कितने कहे गए हैं ? गौतम ! शरीर पाँच कहे गए हैं–औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर ।

भगवन् ! औदारिक शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गए हैं । जैसे–एकेन्द्रिय औदारिक शरीर, यावत् गर्भजमनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर तक जानना चाहिए ।

भगवन् ! औदारिक शरीर वाले जीव की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना कितनी कही गई है ?

गौतम ! (पृथ्वीकायिक आदि की अपेक्षा) जघन्य शरीर-अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण

और उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना (बादर वनस्पतिकायिक की अपेक्षा) कुछ अधिक एक हजार योजन कही गई है । इस प्रकार जैसे अवगाहना संस्थान नामक प्रज्ञापना-पद में औदारिकशरीर की अवगाहना का प्रमाण कहा गया है, वैसा ही यहाँ सम्पूर्ण रूप से कहना चाहिए । इस प्रकार यावत् मनुष्य की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना तीन गव्यूति कही गई है।

भगवन् ! वैक्रियशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! वैक्रियशरीर दो प्रकार का कहा गया है– एकेन्द्रिय वैक्रियिक शरीर और पंचेन्द्रिय वैक्रियिक शरीर । इस प्रकार यावत् सनत्कुमार-कल्प से लेकर अनुत्तर विमानों तक के देवों का वैक्रियिक भवधारणीय शरीर कहना । वह क्रमशः एक-एक रत्नि कम होता है ।

भगवन् ! आहारकशरीर कितने प्रकार का होता है ? गौतम ! आहारक शरीर एक ही प्रकार का कहा गया है ।

भगवन् ! यदि एक ही प्रकार का कहा गया है तो क्या वह मनुष्य आहारकशरीर है अथवा अमनुष्य-आहारक शरीर है ? गौतम ! मनुष्य-आहारकशरीर है, अमनुष्य-आहारक शरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह मनुष्य-आहारक शरीर है तो क्या वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्य-आहारक शरीर है ? गौतम ! वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ।

भगवन् ! यदि वह गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है, तो क्या वह कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य -आहारकशरीर है, अथवा अकर्मभूमिज-गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर है ? गौतम ! कर्मभूमिज गर्भोप-क्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अकर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, तो क्या वह संख्यातवर्षायुष्क कर्म-भूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अथवा असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं ? गौतम ! संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं, असंख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर हैं, तो क्या वह पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अथवा अपर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं ? गौतम ! पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अपर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर नहीं हैं ।

भगवन् ! यदि वह पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारक शरीर हैं, तो क्या वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अथवा मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर हैं, अथवा सम्यग्मिथ्या-दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं ? गौतम ! वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं, न मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं ।

भगवन् ! यदि वह सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर हैं, तो क्या वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अथवा असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अथवा संयतासंयत पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं ? गौतम ! वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर हैं, न असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं और न संयतासंयत पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं ।

भगवन् ! यदि वह संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-

आहारकशरीर हैं, तो क्या प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर है, अथवा अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं ? गौतम ! वह प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य आहारकशरीर नहीं है ।

भगवन् ! यदि वह प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं, तो क्या वह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं, अथवा अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारकशरीर हैं ? गौतम ! यह ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर हैं, अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य-आहारक शरीर नहीं है ।

यह आहारकशरीर समचतुरस्रसंस्थान वाला होता है ।

भगवन् ! आहारकशरीर की कितनी बड़ी शरीर-अवगाहना कही गई है ? गौतम ! जघन्य अवगाहना कुछ कम एक रत्नि (हाथ) और उत्कृष्ट अवगाहना परिपूर्ण एक रत्नि (हाथ) कही गई है ।

भगवन् ! तैजसशरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! पाँच प्रकार का कहा गया है–एकेन्द्रियतैजस शरीर, द्वीन्द्रियतैजसशरीर, त्रीन्द्रियतैजसशरीर, चतुरिन्द्रियतैजसशरीर और पंचेन्द्रियतैजसशरीर । इस प्रकार आरण-अच्युत कल्प तक जानना चाहिए ।

भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए ग्रैवेयक देव की शरीर-अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है? गौतम ! विष्कम्भ-बाहल्य की अपेक्षा शरीर-प्रमाणपात्र कही गई है और आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा नीचे जघन्य यावत् विद्याधर-श्रेणी तक उत्कृष्ट यावत् अधोलोक के ग्रामों तक, तथा ऊपर अपने विमानों तक और तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक कही गई है ।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों की जानना चाहिए ।

इसी प्रकार कार्मण शरीर का भी वर्णन कहना चाहिए ।

सूत्र - २४७

भगवन् ! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है–भवप्रत्यय अवधिज्ञान और क्षायोपशमिक अवधिज्ञान । इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र का सम्पूर्ण अवधिज्ञान पद कह लेना चाहिए ।

सूत्र - २४८

वेदना के विषय में शीत, द्रव्य, शरीर, साता, दुःखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा और अनिदा इतने द्वार ज्ञातव्य हैं ।

सूत्र - २४९

भगवन् ! नारकी क्या शीत वेदना वेदन करते हैं, उष्णवेदना वेदन करते हैं, अथवा शीतोष्ण वेदना वेदन करते हैं ? गौतम ! नारकी शीत वेदना वेदन करते हैं यावत् इस प्रकार से वेदना पद कहना चाहिए ।

भगवन् ! लेश्याएं कितनी कही गई हैं ? गौतम ! लेश्याएं छह कही गई हैं । जैसे–कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या । इस प्रकार लेश्यापद कहना चाहिए ।

सूत्र - २५०

आहार के विषय में अनन्तर-आहारी, आभोग-आहारी, अनाभोग-आहारी, आहार-पुद्गलों के नहीं जानने-देखने वाले और जानने-देखने वाले आदि चतुर्भंगी, प्रशस्त-अप्रशस्त, अध्यवसान वाले और अप्रशस्त अध्यवसान वाले तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्व को प्राप्त जीव ज्ञातव्य हैं ।

सूत्र - २५१

भगवन् ! नारक अनन्तराहारी हैं ? (उपपात क्षेत्र में उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही क्या अपने शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं ?) तत्पश्चात् निर्वर्तनता (शरीर की रचना) करते हैं ? तत्पश्चात् पर्यादानता (अंग-प्रत्यंगों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण) करते हैं ? तत्पश्चात् परिणामनता (गृहीत पुद्गलों का शब्दादि विषय के रूप में उपभोग) करते हैं ? तत्पश्चात् परिचारणा (प्रतिचार) करते हैं ? और तत्पश्चात् विकुर्वणा (नाना प्रकार की विक्रिया) करते हैं ? (क्या यह सत्य है ?) हाँ, गौतम ! ऐसा ही है । (यह कथन सत्य है ।) (यहाँ पर प्रज्ञापना सूत्रोक्त) आहार पद कह लेना चाहिए ।

सूत्र - २५२

भगवन् ! आयुकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! आयुकर्म का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है । जैसे–जातिनामनिधत्तायुष्क, गतिनामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनामनिधत्तायुष्क और अवगाहनानामनिधत्तायुष्क ।

भगवन् ! नारकों का आयुबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! छह प्रकार का कहा गया है । जैसे–जातिनामनिधत्तायुष्क, गतिनामनिधत्तायुष्क, स्थितिनामनिधत्तायुष्क, प्रदेशनामनिधत्तायुष्क, अनुभागनाम-निधत्तायुष्क और अवगाहनानामनिधत्तायुष्क ।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी दंडकों में छह-छह प्रकार का आयुबन्ध जानना चाहिए ।

भगवन् ! नरकगति में कितने विरह–(अन्तर) काल के पश्चात् नारकों का उपपात (जन्म) कहा गया है ? गौतम! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से बारह मुहूर्त्त नारकों का विरहकाल कहा गया है । इसी प्रकार तिर्यग् गति, मनुष्यगति और देवगति का भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिए ।

भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक विरहित रहती है ? अर्थात् कितने समय तक कोई भी जीव सिद्ध नहीं होता ? गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से छह मास सिद्धि प्राप्त करने वालों से विरहित रहती है । अर्थात् सिद्धगति का विरहकाल छह मास है । इसी प्रकार सिद्धगति को छोड़कर शेष सब जीवों की उद्वर्तना (मरण) का विरह भी जानना ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारक कितने विरह-काल के बाद उपपात वाले कहे गए हैं ? उक्त प्रश्न के उत्तर में यहाँ पर (प्रज्ञापनासूत्रोक्त) उपपात-दंडक कहना चाहिए ।

इसी प्रकार उद्वर्तना-दंडक भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! नारक जीव जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का कितने आकर्षों से बन्ध करते हैं ? गौतम ! स्यात् (कदाचित्) एक आकर्ष से, स्यात् दो आकर्षों से, स्यात् तीन आकर्षों से, स्यात् चार आकर्षों से, स्यात् पाँच आकर्षों से, स्यात् छह आकर्षों से, स्यात् सात आकर्षों से और स्यात् आठ आकर्षों से जातिनामनिधत्तायुष्क कर्म का बन्ध करते हैं । किन्तु नौ आकर्षों से बन्ध नहीं करते हैं । इसी प्रकार शेष आयुष्क कर्मों का बन्ध जानना चाहिए ।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर वैमानिक कल्प तक सभी दंडकों में आयुबन्ध के आकर्ष जानना चाहिए

सूत्र - २५३

भगवन् ! संहनन कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! संहनन छह प्रकार का कहा गया है । जैसे–वज्रर्षभ नाराच संहनन, ऋषभनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्धनाराच संहनन, कीलिका संहनन और सेवार्त संहनन ।

भगवन् ! नारक किस संहनन वाले कहे गए हैं ? गौतम ! नारकों के छहों संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है । वे असंहननी होते हैं, क्योंकि उनके शरीर में हड्डी नहीं है, नहीं शिराएं (धमनियाँ) हैं और नहीं स्नायु (आंते) हैं । वहाँ जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अनादेय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम और अमनोभिराम हैं, उनसे नारकों का शरीर संहनन-रहित ही बनता है ।

भगवन् ! असुरकुमार देव किस संहनन वाले कहे गए हैं ? गौतम ! असुरकुमार देवों के छहों संहननों में से कोई भी संहनन नहीं होता है । वे असंहननी होते हैं, क्योंकि उनके शरीर में हड्डी नहीं होती है, नहीं शिराएं होती हैं, और नहीं स्नायु होती हैं । जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय (आदेय, शुभ) मनोज्ञ, मनाम और मनोभिराम होते हैं, उनसे उनका शरीर संहनन-रहित ही परिणत होता है । इस प्रकार नागकुमारों से लेकर स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिए । अर्थात् उनके कोई संहनन नहीं होता ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव किस संहनन वाले कहे गए हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सेवार्तसंहनन वाले कहे गए हैं । इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक तक के सब जीव सेवार्त संहनन वाले होते हैं । गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहों प्रकार के संहनन वाले होते हैं । सम्मूर्च्छिम मनुष्य सेवार्त संहनन वाले होते हैं । गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहों प्रकार के संहनन वाले होते हैं । जिस प्रकार असुरकुमार देव संहनन-रहित हैं, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी संहनन-रहित होते हैं ।

भगवन् ! संस्थान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! संस्थान छह प्रकार का है–समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, सादि या स्वाति संस्थान, वामन संस्थान, कुब्जक संस्थान, हुंडक संस्थान ।

भगवन् ! नारकी जीव किस संस्थान वाले कहे गए हैं ? गौतम ! नारक जीव हुंडकसंस्थान वाले कहे गए हैं। भगवन् ! असुरकुमार देव किस संस्थान वाले होते हैं ? गौतम ! असुरकुमार देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं ।

पृथ्वीकायिक जीव मसूरसंस्थान वाले कहे गए हैं । अप्कायिक जीव स्तिबुक (बिन्दु) संस्थान वाले कहे गए हैं तेजस्कायिक जीव सूचीकलाप संस्थान वाले (सूइयों के पुंज के समान आकार वाले) कहे गए हैं । वायुकायिक जीव पताका–(ध्वज) संस्थान वाले कहे गए हैं । वनस्पतिकायिक जीव नाना प्रकार के संस्थान वाले कहे गए हैं ।

द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यंच जीव हुंडक संस्थान वाले और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच छहों संस्थान वाले कहे गए हैं । सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुंडक संस्थान वाले तथा गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य छहों संस्थान वाले कहे गए हैं ।

जिस प्रकार असुरकुमार देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव भी समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं ।

सूत्र - २५४

भगवन् ! वेद कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! वेद तीन हैं–स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद ।

भगवन् ! नारक जीव क्या स्त्री वेद वाले हैं, अथवा पुरुष वेद वाले हैं ? गौतम ! नारक जीव न स्त्री वेद वाले हैं, न पुरुष वेद वाले हैं, किन्तु नपुंसक वेद वाले होते हैं ।

भगवन् ! असुरकुमार देव स्त्री वेद वाले हैं, पुरुष वेद वाले हैं अथवा नपुंसक वेद वाले हैं ? गौतम ! असुरकुमार देव स्त्री वेद वाले हैं, पुरुष वेद वाले हैं, किन्तु नपुंसक वेद वाले नहीं होते हैं । इसी प्रकार स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिए ।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच और सम्मूर्च्छिम मनुष्य नपुंसक वेद वाले होते हैं । गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य और गर्भोपक्रान्तिक तिर्यंच तीनों वेदों वाले होते हैं ।

सूत्र – २५५, २५६

उस दुःषम-सुषमा काल में और उस विशिष्ट समय में (जब भगवान महावीर धर्मोपदेश करते हुए विहार कर रहे थे, तब) कल्पसूत्र के अनुसार समवसरण का वर्णन वहाँ तक करना चाहिए, जब तक कि सापतय (शिष्य-सन्तान-युक्त) सुधर्मास्वामी और निरपत्य (शिष्य-सन्तान-रहित शेष सभी) गणधर देव व्युच्छिन्न हो गए, अर्थात् सिद्ध हो गए ।

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अतीतकाल की उत्सर्पिणी में सात कुलकर उत्पन्न हुए थे । जैसे– मित्रदाम, सुदाम, सुपार्श्व, स्वयम्प्रभ, विमलघोष, सुघोष और महाघोष ।

सूत्र – २५७-२५९

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में अतीतकाल की अवसर्पिणी में दश कुलकर हुए थे । जैसे– शतंजल, शतायु, अजितसेन, अनन्तसेन, कार्यसेन, भीमसेन, महाभीमसेन । तथा दृढ़रथ, दशरथ और शतरथ ।

सूत्र – २५९, २६०

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल में सात कुलकर हुए । जैसे– विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशष्मान्, अभिचन्द्र, प्रसेनजित, मरुदेव और नाभिराय ।

सूत्र – २६१, २६२

इन सातों ही कुलकरों की सात भार्याएं थीं । जैसे– चन्द्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुष्कान्ता, श्रीकान्ता और मरुदेवी । ये कुलकरों की पत्नीयों के नाम हैं ।

सूत्र – २६३-२६७

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस पिता हुए । जैसे १.नाभि-राय, २. जितशत्रु, ३. जितारि, ४. संवर, ५. मेघ, ६. घर, ७. प्रतिष्ठ, ८. महासेन ९. सुग्रीव, १०. दृढ़रथ, ११. विष्णु, १२. वसुपूज्य, १३. कृतवर्मा, १४. सिंहसेन, १५. भानु, १६. विश्वसेन, १७. सूरसेन, १८. सुदर्शन, १९. कुम्भराज, २०. सुमित्र, २१. विजय, २२. समुद्रविजय, २३. अश्वसेन और २४. सिद्धार्थ क्षत्रिय । तीर्थ के प्रवर्तक जिनवरों के ये पिता उच्च कुल और उच्च विशुद्ध वंश वाले तथा उत्तम गुणों से संयुक्त थे ।

सूत्र – २६८-२७०

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस माताएं हुई हैं । जैसे–१. मरु-देवी, २. विजया, ३. सेना, ४. सिद्धार्था, ५. मंगला, ६. सुसीमा, ७. पृथ्वी, ८. लक्ष्मणा, ९. रामा, १०. नन्दा, ११. विष्णु, १२. जया, १३. श्यामा, १४. सुयशा, १५. सुव्रता, १६. अचिरा, १७. श्री, १८. देवी, १९. प्रभावती, २०. पद्मा, २१. वप्रा, २२. शिवा, २३. वामा और २४. त्रिशला देवी । ये चौबीस जिन-माताएं हैं ।

सूत्र – २७१-२७५

इन चौबीस तीर्थंकरों के पूर्वभव के चौबीस नाम थे । जैसे– १. वज्रनाभ, २. विमल, ३. विमलवाहन, ४. धर्मसिंह, ५. सुमित्र, ६. धर्ममित्र, ७. सुन्दरबाहु, ८. दीर्घबाहु, ९. युगबाहु, १०. लष्ठबाहु, ११. दत्त, १२. इन्द्रदत्त, १३. सुन्दर, १४. माहेन्द्र, १५. सिंहस्थ, १६. मेघरथ, १७. रुक्मी, १८. सुदर्शन, १९. नन्दन, २०. सिंहगिरि, २१. अदीनशत्रु, २२. शंख, २३. सुदर्शन और २४. नन्दन । ये इसी अवसर्पिणी के तीर्थंकरों के पूर्वभव के नाम जानना चाहिए ।

सूत्र – २७६-२८०

इन चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस शिबिकाएं (पालकियाँ) थीं । (जिन पर बिराजमान होकर तीर्थंकर प्रव्रज्या के लिए वन में गए ।) जैसे– १. सुदर्शना शिबिका, २. सुप्रभा, ३. सिद्धार्था, ४. सुप्रसिद्धा, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता, ९. अरुणप्रभा, १०. चन्द्रप्रभा, ११. सूर्यप्रभा, १२. अग्निप्रभा, १३. सुप्रभा, १४. विमला, १५. पंचवर्णा, १६. सागरदत्ता, १७. नागदत्ता, १८. अभयकरा, १९. निर्वृत्तिकरा, २०. मनोरमा, २१. मनोहरा, २२. देवकुरा, २३. उत्तरकुरा और २४. चन्द्रप्रभा । ये सभी शिबिकाएं विशाल थीं । सर्वजगत्-वत्सल सभी जिनवरेन्द्रों की ये शिबिकाएं सर्व ऋतुओं में सुख-दायिनी उत्तम और शुभ कान्ति से युक्त होती हैं ।

सूत्र - २८१

जिन-दिक्षा-ग्रहण करने के लिए जाते समय तीर्थंकरों की इन शिबिकाओं को सबसे पहले हर्ष से रोमांचित मनुष्य अपने कंधों पर उठाकर ले जाते हैं । पीछे असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र उन शिबिकाओं को लेकर चलते हैं ।

सूत्र - २८२

चंचल चपल कुण्डलों के धारक और अपनी ईच्छानुसार विक्रियामय आभूषणों को धारण करने वाले वे देवगण सुर-असुरों से वन्दित जिनेन्द्रों की शिबिकाओं को वहन करते हैं ।

सूत्र - २८३

इन शिबिकाओं को पूर्व की ओर (वैमानिक) देव, दक्षिण पार्श्व में नागकुमार, पश्चिम पार्श्व में असुरकुमार और उत्तर पार्श्व में गरुड़कुमार देव वहन करते हैं ।

सूत्र - २८४

ऋषभदेव विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि द्वारावती से और शेष सर्व तीर्थंकर अपनी-अपनी जन्मभूमियों से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए नीकले थे ।

सूत्र - २८५

सभी चौबीसों जिनवर एक दूष्य (इन्द्र-समर्पित दिव्य वस्त्र) से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए नीकले थे । न कोई अन्य पाखंडी लिंग से दीक्षित हुआ, न गृहीलिंग से और न कुलिंग से दीक्षित हुआ । (किन्तु सभी जिन-लिंग से ही दीक्षित हुए थे ।)

सूत्र - २८६

दीक्षा-ग्रहण करने के लिए भगवान महावीर अकेले ही घर से नीकले थे । पार्श्वनाथ और मल्लि जिन तीन-तीन सौ पुरुषों के साथ नीकले । तथा भगवान वासुपूज्य छह सौ पुरुषों के साथ नीकले थे ।

सूत्र - २८७

भगवान ऋषभदेव चार हजार उग्र, भोग राजन्य और क्षत्रिय जनों के परिवार के साथ दीक्षा ग्रहण करने के लिए घर से नीकले थे । शेष उन्नीस तीर्थंकर एक-एक हजार पुरुषों के साथ नीकले थे ।

सूत्र - २८८

सुमति देव नित्य भक्त के साथ, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त के साथ, पार्श्व और मल्ली अष्टमभक्त के साथ और शेष बीस तीर्थंकर षष्ठभक्त के नियम के साथ दीक्षित हुए थे ।

सूत्र – २८९-२९४

इन चौबीसो तीर्थंकरों को प्रथम बार भिक्षा देने वाले चौबीस महापुरुष हुए हैं । जैसे– १. श्रेयांस, २. ब्रह्मदत्त, ३. सुरेन्द्रदत्त, ४. इन्द्रदत्त, ५. पद्म, ६. सोमदेव, ७. माहेन्द्र, ८. सोमदत्त, ९. पुष्य, १०. पुनर्वसु, ११. पूर्णनन्द, १२. सुनन्द, १३. जय, १४. विजय, १५. धर्मसिंह, १६. सुमित्र, १७. वर्गसिंह, १८. अपराजित, १९. विश्वसेन, २०. वृषभसेन, २१. दत्त, २२. वरदत्त, २३. धनदत्त और, २४. बहुल, ये क्रम से चौबीस तीर्थंकरों के पहली बार आहारदान करने वाले जानना चाहिए ।

इन सभी विशुद्ध लेश्या वाले और जिनवरों की भक्ति से प्रेरित होकर अंजलिपुट से उस काल और उस समय में जिनवरेन्द्र तीर्थंकरों को आहार का प्रतिलाभ कराया ।

लोकनाथ भगवान ऋषभदेव को एक वर्ष के बाद प्रथम भिक्षा प्राप्त हुई । शेष सब तीर्थंकरों को प्रथम भिक्षा दूसरे दिन प्राप्त हुई ।

सूत्र - २९५

लोकनाथ ऋषभदेव को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस प्राप्त हुआ । शेष सभी तीर्थंकरों को प्रथम भिक्षा में अमृत-रस के समान परम-अन्न (खीर) प्राप्त हुआ ।

सूत्र - २९६

सभी तीर्थंकर जिनों ने जहाँ जहाँ प्रथम भिक्षा प्राप्त की, वहाँ वहाँ शरीरप्रमाण ऊंची वसुधारा की वर्षा हुई।

सूत्र – २९७-३००

इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चैत्यवृक्ष थे । जैसे–१. न्यग्रोध (वट), २. सप्तपर्ण, ३. शाल, ४. प्रियाल, ५. प्रियंगु, ६. छत्राह, ७. शिरीष, ८. नागवृक्ष, ९. साली १०. पिलंखुवृक्ष । तथा–११. तिन्दुक, १२. पाटल, १३. जम्बु, १४. अश्वत्थ (पीपल), १५. दधिपर्ण, १६. नन्दीवृक्ष, १७. तिलक, १८. आम्रवृक्ष, १९. अशोक, २०. चम्पक, २१. बकुल, २२. वेत्रसवृक्ष, २३. धातकीवृक्ष और २४. वर्धमान का शालवृक्ष । ये चौबीस तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष हैं ।

सूत्र - ३०१

वर्धमान भगवान का चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष ऊंचा था, वह नित्य-ऋतुक या अर्थात् प्रत्येक ऋतु में उसमें पत्र -पुष्प आदि समृद्धि विद्यमान रहती थी । अशोकवृक्ष सालवृक्ष से आच्छन्न (ढंका हुआ) था ।

सूत्र - ३०२

ऋषभ जिन का चैत्यवृक्ष तीन गव्यूति (कोश) ऊंचा था । शेष तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष उनके शरीर की ऊंचाई से बारह गुण ऊंचे थे ।

सूत्र - ३०३

जिनवरों के ये सभी चैत्यवृक्ष छत्र-युक्त, ध्वजा-पताका-सहित, वेदिका-सहित तोरणों से सुशोभित तथा सुरों, असुरों और गरुड़देवों से पूजित थे ।

सूत्र – ३०४-३०७

इन चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस प्रथम शिष्य थे । जैसे– १. ऋषभदेव के प्रथम शिष्य ऋषभसेन और अजितजिन के प्रथम शिष्य सिंहसेन थे । पुनः क्रम से ३. चारु, ४. वज्रनाभ, ५. चमर, ६. सुव्रत, ७. विदर्भ, ८. दत्त, ९. वराह, १०. आनन्द, ११. गोस्तुभ, १२. सुधर्म, १३. मन्दर, १४. यश, १५. अरिष्ट, १६. चक्ररथ, १७. स्वयम्भू, १८. कुम्भ, १९. इन्द्र, २०. कुम्भ, २१. शुभ, २२. वरदत्त, २३. दत्त और २४. इन्द्रभूति प्रथम शिष्य हुए । ये सभी उत्तम उच्चकुल वाले, विशुद्ध वंश वाले और गुणों से संयुक्त थे और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों के प्रथम शिष्य थे ।

सूत्र – ३०८-३११

इन चौबीस तीर्थंकरों की चौबीस प्रथम शिष्याएं थीं । जैसे–१. ब्राह्मी, २. फल्गु, ३. श्यामा, ४. अजिता, ५. काश्यपी, ६. रति, ७. सोमा, ८. सुमना, ९. वारुणी, १०. सुलसा, ११. धारिणी, १२. धरणी, १३. धरणिधरा, १४. पद्मा, १५. शिवा, १६. शुचि, १७. अंजुका, १८. भावितात्मा, १९. बन्धुमती, २०. पुष्पवती, २१. आर्या अमिला, २२. यशस्विनी, २३. पुष्पचूला और २४. आर्या चन्दना । ये सब उत्तम उन्नत कुल वाली, विशुद्ध वाली, गुणों से संयुक्त थीं और तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों की प्रथम शिष्याएं हुईं ।

सूत्र – ३१२-३९४

इस जम्बूद्वीप के इसी भारत वर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में उत्पन्न हुए चक्रवर्तियों के बारह पिता थे । जैसे–१. ऋषभजिन, २. सुमित्र, ३. विजय, ४. समुद्रविजय, ५. अश्वसेन, ६. विश्वसेन, ७. सूरसेन, ८. कार्तवीर्य, ९. पद्मोत्तर, १०. महाहरि, ११. विजय और १२. ब्रह्म । ये बारह चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम हैं ।

सूत्र - ३१५

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्तियों की बारह माताएं हुईं । जैसे– सुमंगला, यशस्वती, भद्रा, सहदेवी, अचिरा, श्री, देवी, तारा, ज्वाला, मेरा, वप्रा और बारहवी चुल्लिनी ।

सूत्र - ३१६

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हुए । जैसे–

सूत्र – ३१७, ३१८

१. भरत, २. सगर, ३. मधवा, ४. राजशार्दूल सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. कौरव-वंशी सुभूम, ९. महापद्म, १०. राजशार्दूल हरिषेण, ११. जय और १२. ब्रह्मदत्त ।

सूत्र – ३१९, ३२०

इन बारह चक्रवर्तियों के बारह स्त्रीरत्न थे । जैसे– १. प्रथम सुभद्रा, २. भद्रा, ३. सुनन्दा, ४. जया, ५. विजया, ६. कृष्णश्री, ७. सूर्यश्री, ८. पद्मश्री, ९. वसुन्धरा, १०. देवी, ११. लक्ष्मीवती और १२. कुरुमती । ये स्त्रीरत्नों के नाम हैं ।

सूत्र - ३२१

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के नौ पिता हुए । जैसे–

सूत्र - ३२२

१. प्रजापति, २. ब्रह्म, ३. सोम, ४. रुद्र, ५. शिव, ६. महाशिव, ७. अग्निशिख, ८. दशरथ और ९. वसुदेव ।

सूत्र – ३२३, ३२४

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में नौ वासुदेवों की नौ माताएं हुई । जैसे–१. मृगावती, २. उमा, ३. पृथ्वी, ४. सीता, ५. अमृता, ६. लक्ष्मीमती, ७. शेषमती, ८. केकयी और ९. देवकी ।

सूत्र – ३२५, ३२६

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में नौ बलदेवों की नौ माताएं हुई । जैसे– १. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता और ९. रोहिणी । ये नौ बलदेवों की माताएं थीं ।

सूत्र - ३२७

इस जम्बूद्वीप में इस भारतवर्ष के इस अवसर्पिणीकाल में नौ दशारमंडल (बलदेव और वासुदेव समुदाय) हुए हैं । सूत्रकार उनका वर्णन करते हैं–

वे सभी बलदेव और वासुदेव उत्तम कुल में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ पुरुष थे, तीर्थंकरादि शलाका-पुरुषों के मध्य-वर्ती होने से मध्यम पुरुष थे, अथवा तीर्थंकरों के बल की अपेक्षा कम और सामान्य जनों के बल की अपेक्षा अधिक बलशाली होने से वे मध्यम पुरुष थे । अपने समय के पुरुषों के शौर्यादि गुणों की प्रधानता की अपेक्षा वे प्रधान पुरुष थे । मानसिक बल से सम्पन्न होने के कारण ओजस्वी थे । देदीप्यमान शरीरों के धारक होने से तेजस्वी थे । शारीरिक बल से संयुक्त होने के कारण वर्चस्वी थे, पराक्रम के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त करने से यशस्वी थे । शरीर की छाया (प्रभा) से युक्त होने के कारण वे छायावन्त थे । शरीर की कान्ति से युक्त होने से कान्त थे, चन्द्र के समान सौम्य मुद्रा के धारक थे, सर्वजनों के वल्लभ होने से वे सुभग या सौभाग्यशाली थे । नेत्रों को अतिप्रिय होने से वे प्रियदर्शन थे ।

समचतुरस्र संस्थान के धारक होने से वे सुरूप थे । शुभ स्वभाव होने से वे शुभशील थे । सुखपूर्वक सरलता से प्रत्येक जन उनसे मिल सकता था, अतः वे सुखाभिगम्य थे । सर्व जनों के नयनों के प्यारे थे । कभी नहीं थकने वाले अविच्छिन्न प्रवाहयुक्त बलशाली होने से वे ओधबली थे, अपने समय के सभी पुरुषों के बल का अति-क्रमण करने से अतिबली थे, और महान् प्रशस्त या श्रेष्ठ बलशाली होने से वे महाबली थे । निरुपक्रम आयुष्य के धारक होने से अनिहत अर्थात् दूसरे के द्वारा होने वाले घात या मरण से रहित थे, अथवा मल्ल-युद्ध में कोई उनको पराजित नहीं कर सकता था, इसी कारण वे अपराजित थे ।

बड़े-बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने से वे शत्रु-मर्दन थे, सहस्त्रों शत्रुओं के मान का मथन करने वाले थे। आज्ञा या सेवा स्वीकार करने वालों पर द्रोह छोड़कर कृपा करने वाले थे । वे मात्सर्य-रहित थे, क्योंकि दूसरों के लेशमात्र भी गुणों के ग्राहक थे । मन, वचन, काय की स्थिर प्रवृत्ति के कारण वे अचपल (चपलता-रहित) थे । निष्कारण प्रचण्ड क्रोध से रहित थे, मंजुल वचनालाप और मृदु हास्य से युक्त थे ।

गम्भीर, मधुर और परिपूर्ण सत्य वचन बोलते थे । अधीनता स्वीकार करने वालों पर वात्सल्य भाव रखते थे । शरण में आने वाले के रक्षक थे । वज्र, स्वस्तिक, चक्र आदि लक्षणों से और तिल, मशा आदि व्यंजनों के गुणों से संयुक्त थे । शरीर के मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थे, वे जन्म-सात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर के धारक थे । चन्द्र के सौम्य आकार वाले, कान्त और प्रियदर्शन थे । 'अमसृण' अर्थात् कर्तव्य-पालन में आलस्य-रहित थे अथवा 'अणर्षण' अर्थात् अपराध करने वालों पर भी क्षमाशील थे । उद्दंड पुरुषों पर प्रचंड दंडनीति के धारक थे । गम्भीर और दर्शनीय थे । बलदेव ताल वृक्ष के चिह्न वाली ध्वजा के और वासुदेव गरुड़ के चिह्न वाली ध्वजा के धारक थे । वे दशारमंडल कर्ण-पर्यन्त महाधनुषों को खींचने वाले, महासत्त्व (बल) के सागर थे ।

रण-भूमि में उनके प्रहार का सामना करना अशक्य था । वे महान् धनुषों के धारक थे, पुरुषों में धीर-वीर थे, युद्धों में प्राप्त कीर्ति के धारक पुरुष थे, विशाल कुलों में उत्पन्न हुए थे, महारत्न वज्र (हीरा) को भी अंगूठे और तर्जनी दो अंगुलियों से चूर्ण कर देते थे । आधे भरतक्षेत्र के अर्थात् तीन खंड के स्वामी थे । सौम्यस्वभावी थे । राज

कुलों और राजवंशों के तिलक थे । अजित थे (किसी से भी नहीं जीते जाते थे) और अजितरथ (अजेय रथ वाले) थे । बलदेव हल और मूशल रूप शस्त्रों के धारक थे, तथा वासुदेव शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शकत्सिनन्दकनमा खड्ग के धारक थे । प्रवर, उज्ज्वल, सुकान्त, विमल कौस्तुभ मणि युक्त मुकुट के धारी थे । उनका मुख कुण्डलों में लगे मणियों के प्रकाश से युक्त रहता था । कमल के समान नेत्र वाले थे ।

एकावली हार कंठ से लेकर वक्षःस्थल तक शोभित रहता था । उनका वक्षःस्थल श्रीवत्स के सुलक्षण से चिह्नित था । वे विश्व-विख्यात यश वाले थे । सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले, सुगन्धित पुष्पों से रची गई, लम्बी, शोभायुक्त, कान्त, विकसित, पंचवर्णी श्रेष्ठ माला से उनका वक्षःस्थल सदा शोभायमान रहता था । उनके सुन्दर अंग-प्रत्यंग एक सौ आठ प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न थे । वे मद-मत्त गजराज के समान ललित, विक्रम और विलास-युक्त गति वाले थे । शरद ऋतु के नव-उदित मेघ के समान मधुर, गंभीर, क्रौंच पक्षी के निर्घोष और दुन्दुभि के समान स्वर वाले थे । बलदेव कटिसूत्र वाले नील कौशेयक वस्त्र से तथा वासुदेव कटिसूत्र वाले पीत कौशेयक वस्त्र से युक्त रहते थे (बलदेवों की कमर पर नीले रंग का और वासुदेवों की कमर पर पीले रंग का दुपट्टा बंधा रहता था)।

वे प्रकृष्ट दीप्ति और तेज से युक्त थे, प्रबल बलशाली होने से वे मनुष्यों में सिंह के समान होने से नरसिंह, मनुष्यों के पति होने से नरपति, परम ऐश्वर्यशाली होने से नरेन्द्र तथा सर्वश्रेष्ठ होने से नर-वृषभ कहलाते थे । अपने कार्यभार का पूर्ण रूप से निर्वाह करने से वे मरुद्-वृषभकल्प अर्थात् देवराज की उपमा को धारण करते थे । अन्य राजा-महाराजाओं से अधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान थे । इस प्रकार नील-वसन वाले नौ राम (बलदेव) और नव पीत-वसन वाले केशव (वासुदेव) दोनों भाई-भाई हुए हैं ।

सूत्र - ३२८

उनमें वासुदेवों के नाम इस प्रकार हैं–१. त्रिपृष्ठ, २. द्विपृष्ठ, ३. स्वयम्भू, ४. पुरुषोत्तम, ५. पुरुषसिंह, ६. पुरुषपुंडरीक, ७. दत्त, ८. नारायण (लक्ष्मण) और ९. कृष्ण ।

बलदेवों के नाम इस प्रकार हैं–१. अचल, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म और ९. अन्तिम बलदेव राम ।

सूत्र – ३२९, ३३०

इन नव बलदेवों और वासुदेवों के पूर्व भव के नौ नाम इस प्रकार थे– १. विश्वभूति, २. पर्वत, ३. धनदत्त, ४. समुद्रदत्त, ५. ऋषिपाल, ६. प्रियमित्र, ७. ललितमित्र, ८. पुनर्वसु, ९. और गंगदत्त । ये वासुदेवों के पूर्व भव में नाम थे ।

सूत्र – ३३१, ३३२

इससे आगे यथाक्रम से बलदेवों के नाम कहूँगा । १. विश्वनन्दी, २. सुबन्धु, ३. सागरदत्त, ४. अशोक, ५. ललित, ६. वाराह, ७. धर्मसेन, ८. अपराजित और ९. राजललित ।

सूत्र – ३३३, ३३४

इस नव बलदेवों और वासुदेवों के पूर्वभव में नौ धर्माचार्य थे– १. संभूत, २. सुभद्र, ३. सुदर्शन, ४. श्रेयांस, ५. कृष्ण, ६. गंगदत्त, ७. सागर, ८. समुद्र और ९. द्रुमसेन ।

सूत्र - ३३५

ये नवों ही धर्माचार्य कीर्तिपुरुष वासुदेवों के पूर्व भव में धर्माचार्य थे । जहाँ वासुदेवों ने पूर्व भव में निदान किया था उन नगरों के नाम आगे कहते हैं–

सूत्र – ३३६, ३३७

इन नवों वासुदेवों की पूर्व भव में नौ निदान-भूमियाँ थीं । (जहाँ पर उन्होंने निदान (नियाणा) किया था) । जैसे– १. मथुरा, २. कनकवस्तु, ३. श्रावस्ती, ४. पोदनपुर, ५. राजगृह, ६. काकन्दी, ७. कौशाम्बी, ८. मिथिला-पुरी और ९. हस्तिनापुर ।

सूत्र – ३३८, ३३९

इन नवों वासुदेवों के निदान करने के नौ कारण थे– १. गावी (गाय), २. यूतस्तम्भ, ३. संग्राम, ४. स्त्री, ५.

युद्ध में पराजय, ६. स्त्री-अनुराग, ७. गोष्ठी, ८. पर-ऋद्धि और ९. मातृका (माता) ।

सूत्र – ३४०-३४२

इन नवों वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) थे । जैसे– १. अश्वग्रीव, २. तारक, ३. मेरक, ४. मधुकैटभ, ५. निशुम्भ, ६. बलि, ७. प्रभराज (प्रह्लाद), ८. रावण और ९. जरासन्ध । ये कीर्तिपुरुष वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु थे । ये सभी चक्रयोधी थे और सभी अपने ही चक्रों से युद्ध में मारे गए ।

सूत्र - ३४३

उक्त नौ वासुदेवों में से एक मरकर सातवी पृथ्वी में, पाँच वासुदेव छठी पृथ्वी में, एक पाँचवी में, एक चौथी में और एक कृष्ण तीसरी पृथ्वी में गए ।

सूत्र - ३४४

सभी राम (बलदेव) अनिदानकृत होते हैं और सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान करते हैं । सभी राम मरण कर ऊर्ध्वगामी होते हैं और सभी वासुदेव अधोगामी होते हैं ।

सूत्र - ३४५

आठ राम (बलदेव) अन्तकृत् अर्थात् कर्मों का क्षय करके संसार का अन्त करने वाले हुए । एक अन्तिम बलदेव ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुए । जो आगामी भव में एक गर्भवास लेकर सिद्ध होंगे ।

सूत्र – ३४६-३५१

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में इसी अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर हुए– १. चन्द्र के समान मुख वाले सुचन्द्र, २. अग्निसेन, ३. नन्दिसेन, ४. व्रतधारी ऋषिदत्त और ५. सोमचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ । ६. युक्तिसेन, ७. अजितसेन, ८. शिवसेन, ९. बुद्ध, १०. देवशर्म, ११. निक्षिप्तशस्त्र (श्रेयांस) की मैं सदा वन्दना करता हूँ । तथा– १२. असंज्वल, १३. जिनवृषभ और १३. अमितज्ञानी अनन्त जिन की मैं वन्दना करता हूँ । १५. कर्मरज-रहित उपशान्त और १६. गुप्तिसेन की भी मैं वन्दना करता हूँ । १७. अतिपार्श्व, १८. सुपार्श्व तथा १९. देवेश्वरों से वन्दित मरुदेव, २०. निर्वाण को प्राप्त घर और २१. प्रक्षीण दुःख वाले श्यामकोष्ठ, २२. रागविजेता अग्निसेन । २३. क्षीणरागी अग्निपुत्र और राग-द्वेष का क्षय करने वाले, सिद्धि को प्राप्त चौबीसवे वारिषेण की मैं वन्दना करता हूँ ।

सूत्र – ३५२, ३५३

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर होंगे । जैसे–१. मितवाहन, २. सुभूम, ३. सुप्रभ, ४. स्वयंप्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म और ७. सुबन्धु । ये आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे ।

सूत्र - ३५४

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में दश कुलकर होंगे–१. विमलवाहन, २. सीमंकर ३. सीमंधर, ४. क्षेमंकर, ५. क्षेमंधर, ६. दृढ़धनु, ७. दशधनु, ८. शतधनु, ९. प्रतिश्रुति और १०. सुमति ।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर होंगे ।

सूत्र – ३५५-३५९

१. महापद्म, २. सूरदेव, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. सर्वानुभूति, ६. देवश्रुत, ७. उदय, ८. पेढ़ालपुत्र, ९. प्रोष्ठिल, १०. शतकीर्ति, ११. मुनिसुव्रत, १२. सर्वभाववित् , १३. अमम, १४. निष्कषाय, १५. निष्पुलाक, १६. निर्मम, १७. चित्रगुप्त, १८. समाधिगुप्त,१९. संवर, २०. अनिवृत्ति, २१. विजय, २२. विमल, २३. देवोपपात और २४. अनन्तविजय ये चौबीस तीर्थंकर भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में धर्मतीर्थ की देशना करने वाले होंगे ।

सूत्र – ३६०-३६४

इन भविष्यकालीन चौबीस तीर्थंकरों के पूर्व भव के चौबीस नाम इस प्रकार हैं, यथा– १. श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदय, ४. प्रोष्ठिल अनगार, ५. दृढ़ायु, ६. कार्तिक, ७. शंख, ८. नन्द, ९. सुनन्द, १०. शतक, ११. देवकी, १२. सात्यकि, १३. वासुदेव, १४. बलदेव, १५. रोहिणी, १६. सुलसा, १७. रेवती, १८. शताली, १९.

भयाली, २०. द्वीपायन, २१. नारद, २२. अंबड, २३. स्वाति, २४. बुद्ध । ये भावि तीर्थंकरों के पूर्व भव के नाम जानना चाहिए ।

सूत्र - ३६५

उक्त चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस पिता होंगे, चौबीस माताएं होंगी, चौबीस प्रथम शिष्य होंगे, चौबीस प्रथम शिष्याएं होंगी, चौबीस प्रथम भिक्षा-दाता होंगे और चौबीस चैत्य वृक्ष होंगे ।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे । जैसे–

सूत्र – ३६६, ३६७

१. भरत, २. दीर्घदन्त, ३. गूढ़दन्त, ४. शुद्धदन्त, ५. श्रीपुत्र, ६. श्रीभूति, ७. श्रीसोम, ८. पद्म, ९. महापद्म, १०. विमलवाहन, ११. विपुलवाहन, बारहवाँ रिष्ट, ये बारह चक्रवर्ती आगामी उत्सर्पिणी काल में भरतक्षेत्र के स्वामी होंगे ।

सूत्र - ३६८

इन बारह चक्रवर्तियों के बारह पिता, बारह माता और बारह स्त्रीरत्न होंगे ।

इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के पिता होंगे, नौ वासुदेवों की माताएं होंगी, नौ बलदेवों की माताएं होंगी, नौ दशार-मंडल होंगे । वे उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष, ओजस्वी, तेजस्वी आदि पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त होंगे । पूर्व में जो दशार-मंडल का विस्तृत वर्णन किया है, वह सब यहाँ पर भी यावत् बलदेव नील वसन वाले और वासुदेव पीत वसन वाले होंगे, यहाँ तक ज्यों का त्यों कहना चाहिए । इस प्रकार भविष्यकाल में दो दो राम और केशव भाई होंगे । उनके नाम इस प्रकार होंगे–

सूत्र – ३६९, ३७०

१. नन्द, २. नन्दमित्र, ३. दीर्घबाहु, ४. महाबाहु, ५. अतिबल, ६. महाबल, ७. बलभद्र, ८. द्विपृष्ठ और ९. त्रिपृष्ठ ये नौ आगामी उत्सर्पिणी काल में नौ वृष्णी या वासुदेव होंगे । तथा १. जयन्त, २. विजय, ३. भद्र, ४. सुप्रभ, ५. सुदर्शन, ६. आनन्द, ७. नन्दन, ८. पद्म और अन्तिम संकर्षण ये ९ (नौ) बलदेव होंगे ।

सूत्र - ३७१

इन नवों बलदेवों और वासुदेवों के पूर्वभव के नौ नाम होंगे, नौ धर्माचार्य होंगे, नौ निदानभूमियाँ होंगी, नौ निदान-कारण होंगे और नौ प्रतिशत्रु होंगे । जैसे–

सूत्र – ३७२, ३७३

१. तिलक, २. लोहजंघ, ३. वज्रजंघ, ४. केशरी, ५. प्रभराज, ६. अपराजित, ७. भीम, ८. महाभीम और ९. सुग्रीव । कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये नौ प्रतिशत्रु होंगे । सभी चक्रयोधी होंगे और युद्ध में अपने चक्रों से मारे जाएंगे ।

सूत्र – ३७४-३८१

इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकर होंगे । जैसे– १. सुमंगल, २. सिद्धार्थ, ३. निर्वाण, ४. महायश, ५. धर्मध्वज, ये अरहन्त भगवंत आगामी काल में होंगे, पुनः ६. श्रीचन्द्र, ७. पुष्पकेतु, ८. महाचन्द्र केवली और ९. श्रुतसागर अर्हत् होंगे, पुनः १०. सिद्धार्थ, ११. पूर्णघोष, १२. महाघोष केवली और १३. सत्यसेन अर्हन् होंगे, तत्पश्चात् १४. सूरसेन अर्हन्, १५. महासेन केवली, १६. सर्वानन्द और १७. देवपुत्र अर्हन् होंगे । तदनन्तर, १८. सुपार्श्व, १९. सुव्रत अर्हन्, २०. सुकोशल अर्हन् और २१. अनन्तविजय अर्हन् आगामी काल में होंगे । तदनन्तर, २२. विमल अर्हन्, उनके पश्चात् २३. महाबल अर्हन् और फिर, २४. देवानन्द अर्हन् आगामी काल में होंगे । ये ऊपर कहे हुए चौबीस तीर्थंकर केवली रवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में धर्म-तीर्थ की देशना करने वाले होंगे

सूत्र - ३८२

(इसी जम्बूद्वीप के ऐरवत वर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में) बारह चक्रवर्ती होंगे, बारह चक्रवर्तियों के पिता होंगे, उनकी बारह माताएं होंगी, उनके बारह स्त्रीरत्न होंगे । नौ बलदेव और वासुदेवों के पिता होंगे, नौ

वासुदेवों की माताएं होंगी, नौ बलदेवों की माताएं होंगी । नौ दशार मंडल होंगे, जो उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, प्रधान पुरुष यावत् सर्वाधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान दो-दो राम-केशव (बलदेव-वासुदेव) भाई-भाई होंगे। उनके नौ प्रतिशत्रु होंगे, उनके नौ पूर्वभव के नाम होंगे, उनके नौ धर्माचार्य होंगे, उनकी नौ निदान-भूमियाँ होंगी, निदान के नौ कारण होंगे

इसी प्रकार से आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवतक्षेत्र में होने वाले बलदेवादि का मुक्ति-गमन, स्वर्ग से आगमन, मनुष्यों में उत्पत्ति और मुक्ति का भी कथन करना ।

इसी प्रकार भरत और ऐरवत इन दोनों क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी काल में होने वाले वासुदेव आदि का कथन करना चाहिए ।

सूत्र - ३८३

इस प्रकार यह अधिकृत समवायाङ्ग सूत्र अनेक प्रकार के भावों और पदार्थों को वर्णन करने के रूप से कहा गया है । जैसे–इसमें कुलकरों के वंशों का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार तीर्थंकरों के वंशों का, चक्रवतियों के वंशों का, दशार-मंडलों का, गणधरों के वंशों का, ऋषियों के वंशों का, यतियों के वंशों का और मुनियों के वंशों का भी वर्णन किया गया है ।

परोक्षरूप से त्रिकालवर्ती समस्त अर्थों का परिज्ञान कराने से यह श्रुतज्ञान है, श्रुतरूप प्रवचन-पुरुष का अंग होने से यह श्रुताङ्ग है, इसमें समस्त सूत्रों का अर्थ संक्षेप से कहा गया है, अतः यह श्रुतसमास है, श्रुत का समुदाय रूप वर्णन करने से यह 'श्रुतस्कन्ध' है, समस्त जीवादि पदार्थों का समुदायरूप कथन करने से यह 'समवाय' कहलाता है, एक दो तीन आदि की संख्या के रूप से संख्यान का वर्णन करने से यह 'संख्या' नाम से भी कहा जाता है । इसमें आचारादि अंगों के समान श्रुतस्कन्ध आदि का विभाग न होने से इसे 'अध्ययन' भी कहते हैं ।

इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को लक्ष्य करके कहते हैं कि इस अंग को भगवान महावीर के समीप जैसा मैनें सूना, उसी प्रकार से मैंने तुम्हें कहा है ।

समवाय प्रकीर्णक का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

मुनि दीपरत्नसागर कृत्
४ - समवाय-अंगसूत्र-४ का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

४

समवाय

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઇટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઇમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઇલ 09825967397